एक अकुंठ कवि के काव्य में व्यंजित जीवन-दृष्टि

3.1 मानव जीवन में आस्था की कविता

कुँवर नारायण की कविता के केंद्र में 'मनुष्य' है। मानवीय जीवन की संभावनाओं के प्रति वे आस्थावान रहे हैं। ध्यातव्य है कि उनकी कविता शब्द के माध्यम से ज़िन्दगी को देखने का यत्न करती है। उनकी पूरी काव्य-यात्रा इसी यत्न का प्रतिफल है। जिस कवि को कपड़े पर मासूम रक्त के छींटों की अपेक्षा आत्मा पर गहरे प्यार का जख्म सह्य हो, जो 'यांत्रिकता की अपेक्षा मनुष्यता'[1] की ओर सरके जीवन की आकांक्षा रखता हो, जो 'व्यक्ति को/विकार की तरह पढ़ना'[2] को जीवन का अशुद्ध पाठ मानता हो निश्चय ही उनकी कविता का उत्स मानवीय जीवन में ही तलाशा जा सकता है। कुँवर नारायण की कविता उन ताकतों से मुठभेड़ करती है जो मनुष्य को यंत्र में तब्दील करने वाली प्रक्रिया की मददगार है। लेकिन इस मुठभेड़ में भी एक विनम्रता है जो कि कुँवर नारायण के स्वभाव का परिणाम है। ग़ौरतलब है कि हम जिस समय में जी रहे हैं वह एक त्रासदीपूर्ण समय है। एक ऐसे त्रासदी का समय जब मानवीय संवेदनाओं की परिधि निरंतर संकुचित होती जा रही है। कुँवर नारायण इस बात से भलीभाँति परिचित हैं कि ऐसे समय में साहित्य की क्या जवाबदेही होनी चाहिए? वे अपनी कविताओं द्वारा संवेदना की परिधि के विस्तार के लिए निरंतर प्रयासरत दिखते हैं। कुँवर नारायण की कविताओं में मनुष्य चाहे तो आत्मपरीक्षण के लिए कई सूत्र खोज सकता है। इस आत्मपरीक्षण के पश्चात व्यक्ति अपनी संवेदना की परिधि का विस्तार कर पाएगा। आज की उपभोक्तावादी संस्कृति में मनुष्य बाज़ार का गुलाम बन चुका है। हमारी सोच-समझ के दायरे से लेकर भाषा-व्यवहार तक का नियंता यह बाज़ार बनता जा रहा है। पिछले 20-25 सालों से यह बाज़ार हमारे जीवन-विवेक और जीवन-दृष्टि को अपने अनुसार संचालित करने के लिए निरंतर प्रयासरत है। इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने मनुष्य को वस्तु में तब्दील कर दिया है। आज मनुष्य की महत्ता मानवीय गुणों से आँके जाने के

बजाय इस बात से आँकी जाती है कि वह बाज़ार के लिए कितना बड़ा उपभोक्ता है। दरअसल होना यह चाहिए था कि बाज़ार को हमारी ज़रूरत होती और मानवीय चेतना से वह संचालित होती। पर बाज़ार और मनुष्य के संबंध ठीक उल्टे हो चले हैं। हमने जीवन को अपनी सहूलियत के अनुरूप ढालने के चक्कर में जीवन की परिधि को संकुचित कर लिया है। हमारी चेतना, व्यवहार और भाषा का संचालन बाज़ार कर रहा है। हम बाज़ार की भाषा बोल रहे हैं। बाज़ार हमारे हर कृत्य को नियंत्रित कर रहा है और हम लगातार यंत्र में तब्दील होते जा रहे हैं। ऐसे समय में कुँवर नारायण यह लिखने का साहस करते हैं-

"बाज़ार एक ऐसी जगह है,

जहाँ मैंने हमेशा पाया है,

एक ऐसा अकेलापन जैसा मुझे,

बड़े-बड़े जंगलों में भी नहीं मिला,

और एक ख़ुशी

कुछ-कुछ सुकरात की तरह

कि इतनी ढेर-सी चीजें

जिनकी मुझे कोई ज़रूरत नहीं"[3]

ऐसा लिख पाने में कवि इसलिए भी सफ़ल हो सके हैं क्योंकि कविता की सार्थकता को उन्होंने कभी व्यावसायिकता से जोड़कर नहीं देखा। कुँवर नारायण के लिए कविता की दुनिया एक ऐसी दुनिया है जिससे गुज़रते हुए हम बार – बार आत्म-मूल्यांकन करें और अपनी ज़िन्दगी

को वृहत्तर परिप्रेक्ष्य और संभावनाओं के साथ देख सकें। 'दिशाओं का खुला आकाश' में कुँवर नारायण ने लिखा भी है-"जहाँ हम अपने रू-ब-रू होकर ज़िन्दगी को दैनिकता और व्यावसायिकता से ज्यादा बड़े परिप्रेक्ष्य में भी रखकर सोच सकें। जीवन को यह अतिरिक्त आयाम देने की कोशिश में ही कविता की सबसे अधिक रचनात्मकता और सार्थक हो सकने की संभावनाएँ निहित हैं।"[4]

कुँवर नारायण की कविता सार्थक कविता है क्योंकि यहाँ एक विनम्र कोशिश है मानवीय जीवन को व्यापक फ़लक पर देखने की। तकनीक के महत्त्व से इंकार नहीं है पर जीवन, तकनीक तक ही सीमित नहीं हो सकती। भावजगत का एक विस्तृत क्षेत्र भी है उसके पास, जिसमें हमें नित्य विचरण करते रहना आवश्यक है ताकि हम अपने अस्तित्व को आकार दे सकें। मानव-जीवन की सबसे बड़ी ताक़त 'करुणा' का जन्म इसी भावजगत में होता है। कुँवर नारायण की कविता तकनीक की अंधी प्रतिस्पर्द्धा से इंकार करती है और मनुष्य को उसके सम्पूर्ण रूप में देखने का आग्रह करती है। मानवीय व्यक्तित्व को उसकी सम्पूर्णता में देखने का प्रयास करने वाली ये कविताएँ हमारे व्यापक जीवन-संदर्भों को उद्घाटित करती हैं। इसलिए इन कविताओं का पाठ करना, जीवन का पाठ करना मालूम होता है। ऐसा इसलिए भी हो सका है क्योंकि कुँवर नारायण की कविता आत्मालोचन से उपजी कविता है और आत्म के नित्य अनुसंधान से वह प्रौढ़ होती गई है लेकिन इसका दायरा व्यक्तिगत जीवन या आत्मकेंद्रित नहीं रहा है। उनकी कविता में निज के विस्तार को देखा जा सकता है। इस आत्मालोचन से जो जीवन-दृष्टि विकसित होती है वह हर रोज़ पिछले कल से बृहत्तर, मनुष्यतर और कृतज्ञतर होती नज़र आती है। वे बार-बार जीवन के विविध प्रसंगों में लौटते हुए मानो खनन की प्रक्रिया में संलग्न हों कि बेहतर मनुष्य को खोजकर निकाला जा सके। कुँवर जी की कविताओं का पाठ करते हुए हम भी इस खोज के सहयात्री बनते चले जाते हैं और तब हमें यह अहसास होता है कि इस खोज का पहला और सबसे महत्वपूर्ण पड़ाव है- 'आत्मविश्लेषण'। इस आत्मविश्लेषण की प्रक्रिया से गुजरते हुए एक

रोज़ यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि "अपने को बड़ा रखने की छोटी से छोटी कोशिश भी/ दुनिया को बड़ा रखने की कोशिश है।"[5]

कुँवर नारायण की कविताओं को पढ़ने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि वे मानव में गहरी आस्था रखते हैं और मनुष्य-जीवन की उज्ज्वल आभा को व्यावहारिक धरातल पर देखने के आकांक्षी हैं। अपने पचास साल से अधिक के लेखन-काल में उनका एक प्रयास हमेशा रहा है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच ऐसा सहज रिश्ता बन सके, जिसका आधार नैतिक चेतना से युक्त हो। जब कवि यह लिखते हैं कि "मुझे एक मनुष्य की तरह पढ़ो/ देखो और समझो/ ताकि हमारे बीच एक सहज और खुला रिश्ता बन सके/ माँद और जोखिम का रिश्ता नहीं"[6]तो वह केवल स्वयं के विषय में यह नहीं लिख रहे होते हैं बल्कि प्रत्येक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से सहज रिश्ते की आकांक्षा भी रखते हैं। यह सहजता कुँवर नारायण में भी ताउम्र ज़िंदा रही और उनकी कविताओं में भी। वे साहित्य को हार-जीत का युद्ध-क्षेत्र बनाने से सदा बचते रहे। इसकी एक वजह यह भी रही होगी कि वे साहित्य को विभिन्न विवेकों के समागम और संवाद का माध्यम मानते थे और इस संवाद की शक्ति को पहचानते थे। वे जानते थे कि जीवन को ज्यादा सार्थक और समृद्ध बनाने में इस समागम और संवाद की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका है। कविता और साहित्य द्वारा किये जा सकने वाले संवाद की भाँति मनुष्य के प्रति भी वे आश्वस्त थे। इसी आश्वस्ति की वजह से कुँवर जी 'शब्द और देशकाल' में लिखते हैं- "आदमी आज लाख गिरा हुआ हो, फिर भी आपको विश्वास दिलाता हूँ कि उसका मर्मस्थल अभी भी सुरक्षित है। मैंने उसे देखा है- रोते हुए, हँसते हुए, तड़पते हुए, प्यार करते हुए।यह साहित्य के लिए बहुत बड़ा मौक़ा है या कह सकते हैं क्षेत्र है।"[7]

मनुष्य के प्रति कुँवर नारायण केइस विश्वास को उनकी कविताओं में आद्यांत देखा जा सकता है। वे 'लोकप्रियता' से पहले वृहत्तर 'लोक-कल्याण' के बारे में सोचने वाले कवि हैं।

इसलिए उनकी कविता मानव के प्रति सकारात्मक रुख़ अपनाए हुए है। वे 'रिएक्ट' करने वाले कवि नहीं हैं बल्कि 'रिस्पोंस' करने वाले कवि हैं। वे क्रांति नहीं शान्ति के कवि हैं। इसलिए मानवीय विसंगतियाँ भी उन्हें मनुष्य से नफ़रत करने नहीं देतीं। वे मानवीय दुर्बलताओं से विचलित होने के बजाय मुश्किल से मुश्किल समय में भी मनुष्य में संभावनाओं की खोज का प्रयत्न करते हैं। मनुष्य की बुद्धि (प्रज्ञा) को वे हर दासता से मुक्त रखना चाहते हैं ताकि मनुष्य अपनी सीमातीत उड़ान उड़ सके-

"पूज्य मिट्टी है मगर पत्थर नहीं,

कर्मयोगी आदमी बंजर नहीं,

मत इंसान को शिशु भयों से घेरो,

उसे पूरी तरह तम से निकलने दो;

...आँक लेगा वह पनप कर

विश्व का विस्तार अपनी अस्मिता में,...

सिर्फ़ उसकी बुद्धि को हर दासता से मुक्त रहने दो।"[8]

मनुष्य का चिंतन पक्ष उसके जीवन को कई मायनों में प्रभावित करता है। आपके चिंतन की दिशा दरअसल आपके जीवन की दिशा होती है। कुँवर नारायण इस चिंतन पक्ष का महत्त्व जानते हैं इसलिए मनुष्य को एक तार्किक प्राणी के रूप में देखने के आग्रही हैं। पर बौद्धिक पक्ष को महत्त्व देने के बावजूद उनकी कविता कहीं भी जटिल नहीं हुई है। उनकी कविता मनुष्य के लिए एक ख़ास तरह की दुनिया रचती है जिसमें मनुष्य अपनी परिस्थितियों से, अपने बनाए धार्मिक आडम्बरों से, अपने इतिहास और मिथकों से तथा स्वयं से भी एक संवाद करता है। इस

संवाद का उद्देश्य प्रतिकार नहीं है बल्कि अपनी ख़ामियों का इज़हार है और इस इज़हार में खीज नहीं है अपितु बेहतर भविष्य का स्वप्न है। यह स्वप्न जिन प्रश्नों से होकर गुज़रता है वे मनुष्य के अस्तित्व से संबंधित ऐसे प्रश्न हैं जिनका महत्त्व चिरंतन काल तक रहेगा। ये प्रश्न मनुष्य की बुनियाद से जुड़े हैं इसलिए मनुष्य के लिए अप्रासंगिक हो ही नहीं सकते। ये प्रश्न भाव से लेकर भाषा तक किसी भी संस्कृति, किसी भी भाषा से जुड़े हों पर, इनकी बुनियाद में मानव जीवन है। कुँवर नारायण अपने कथ्य की अभिव्यंजना करने के लिए किसी एक भाषा या परिवेश तक सीमित नहीं रहते बल्कि उनके अनुभव का जो भी क्षेत्र है उन्हें वे प्रयोग में लाते हैं। और, इस अनुभव-क्षेत्र का विस्तार भी अपने आप में अनूठा है इसलिए उनकी कविताओं में प्रयोग किये गये शब्दों की विविधता हमें आश्चर्यचकित करती है। यहाँ उर्दू के शब्द भी हैं, वैदिक ऋचाओं के भी और यूरोपीय भाषाओं के भी। कुँवर जी शब्दों के माध्यम से जीवन को देखते हैं और अपनी कविता द्वारा ऐसे चिरंतन जीवन-मूल्यों का संधान करते हैं जो मनुष्य होने के लिए अनिवार्य है। गोकि इस अनिवार्यता को उत्तर आधुनिक जीवन-शैली में हमने बिसरा दिया है, पर कुँवर नारायण की कविता हमें इसके महत्त्व का अहसास कराती है।उनकी कविता की उपादेयता को खोजने के लिए हमें मानवीय अस्तित्व की उस स्थिति तक पहुँचना होगा जहाँ चीजों और बाज़ारों के बीच होने के बजाय मनुष्य नितांत अकेला हो। ध्यातव्य है कि हम भीड़ में होते हुए भी चेतना के स्तर पर इस अकेलेपन को तलाश सकते हैं। और, वहीं कहीं ये कविताएँ अपनी उपादेयता सिद्ध करती मिलेंगी।

मानवीय अस्तित्व को आकार देने की प्रक्रिया में इस अकेलेपन का विशेष महत्त्व है। मैं जोर देकर इस बात को कहना चाहूंगा कि यह 'अकेलापन' व्यक्तिवाद नहीं है बल्कि यह मानवतावाद से अविच्छिन्न रूप में जुड़ा हुआ है। अपनी कविताओं में जिन प्रश्नों को वे उठाते हैं वे विशुद्ध रूप से मानवीय हैं। चूँकि इन सवालों का सरोकार मानवीय है इसलिए ऊपर से देखने पर ये सवाल चाहे दार्शनिक लगें या बौद्धिक परन्तु अगर हम इनका गहन विश्लेषण करें तो पाते हैं

कि ये सवाल विशुद्ध रूप से बौद्धिक या दार्शनिक न होकर मानवीय हैं। कुँवर नारायण की कविता को पढ़ते हुए हम बौद्धिक ऊहापोह से न गुजरें यह संभव नहीं है परन्तु इन बौद्धिक ऊहापोहों से गुजरने के पश्चात जो अनुभव हमारे हाथ लगते हैं वे कोरी बौद्धिकता की उपज नहीं हो सकते। उनकी दार्शनिकता और बौद्धिकता भी मानवीय जीवन की संभावनाओं को पुष्ट करने वाली हैं। उनकी कविताएँ जीवन को देह और इन्द्रिय-भोग से अलग होकर देखना सिखाती हैं-

"व्यक्ति दास ही नहीं देह का

स्वामी भी है।

अनुशासित ही नहीं

मुक्त अनुशासक भी है इच्छाओं का।

लक्ष्यहीन एन्द्रिय विचरण तो

साधन का उपयोग नहीं-उपभोग मात्र है।"[9]

कुँवर नारायण की कविताओं के विषय में ओम निश्चल का कथन दृष्टव्य है – "उनकी कविता का सदैव मनुष्य से गहरा रिश्ता रहा है। चाहे वह निज की अनुभूतियों का विस्तार हो या संवेदनासिद्ध करुणा, कुँवर नारायण की कविता शब्दों में मनुष्यता के बीज बोने की कार्रवाई है।"[10]

वे एक व्यक्ति के रूप में अपने आस-पास घटित घटनाओं के प्रति न केवल सचेत हैं बल्कि उन घटनाओं के दूरगामी परिणामों के विषय में भी सोचने वाले कवि हैं। पर्यावरण की समस्या से निपटना मानव जीवन के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। आज जिस प्रकार पानी से लेकर हवा तक प्रदूषित होती जा रही है और मनुष्य ने प्रकृति से अपने साहचर्य को लगभग तोड़-

सा लिया है, वह चिंता का विषय है। पिछले कुछ दशकों में हमने जिस तीव्रता से प्रकृति का दोहन किया है उसके घातक परिणाम आने शुरू हो गए हैं और अगर अब भी हम नहीं चेते तो इसकी बहुत बड़ी कीमत सम्पूर्ण मानवता को चुकानी पड़ेगी। कुँवर नारायण की पर्यावरण संबंधी चिंता वाजिब है-

"बचाना है-

नदियों को नाला हो जाने से

हवा को धुँआ हो जाने से

खाने को जहर हो जाने से :

बचाना है – जंगल को मरुस्थल हो जाने से,

बचाना है- मनुष्य को जंगल हो जाने से।"[11]

एक कवि के रूप में कुँवर नारायण केवल इस बात से चिंतित नहीं हैं कि प्रदूषण की समस्या दिनोंदिन गंभीर होती जा रही है बल्कि इसके खतरे से वाकिफ़ होने के बावजूद हम जो इस समस्या को अनदेखा कर रहे हैं, वह कवि को और भी ज़्यादा परेशान कर रहा है। हमें समझना होगा कि पर्यावरण का नुकसान केवल पर्यावरण का नुकसान नहीं है बल्कि उसका प्रभाव उन सभी वन्य-जीवों पर पड़ता है जो पर्यावरण पर निर्भर हैं। आज का मनुष्य जिन विसंगतियों की वजह से पतनोन्मुख है उनमें से एक बड़ी विसंगति पर्यावरण के प्रति उसका रवैया है।

मानवीय विसंगतियों से परिचित होते हुए भी कुँवर नारायण का मनुष्य की सत्ता में जबर्दस्त विश्वास है। एक कवि के रूप में मनुष्य से उनकी यह आशा है कि वह आने वाले समय

में अपना पुनर्मूल्यांकन कर स्वयं को बेहतर बना पाने में सक्षम होगा। चूँकि जितना भरोसा उन्हें मनुष्य पर है उतना ही यकीन वे कविता पर भी करते हैं। इसलिए उनकी कविताओं में मनुष्य और शब्द के संवाद को महसूस किया जा सकता है। इस संवाद में मनुष्य की बेहतरी की कामना भी है और उसके भविष्य के लिए आश्वस्ति का भाव भी। मनुष्य के प्रति आश्वस्ति का भाव ही उनकी कलम को यह लिखने के लिए प्रेरित करता है कि -

"ज़्यादातर कुत्ते

पागल नहीं होते

न ज़्यादातर जानवर

हमलावर

ज़्यादातर आदमी

डाकू नहीं होते

न ज़्यादातर जेबों में चाकू"[12]

कुँवर नारायण की कविता जिन आयामों से होकर गुजरती है वह दरअसल बेहतर मनुष्य को गढ़ने का उपक्रम है। मनुष्य के प्रति यह विश्वास का भाव भी उसी उपक्रम का हिस्सा है। मनुष्य की उस आत्मिक शक्ति के प्रति कुँवर नारायण के मन मेंसम्मान है जो विपरीत परिस्थितियों में भी हिम्मत से काम लेता है। कर्मयोगी मनुष्य इस संसार के लिए कितने ज़रूरी हैं यह कवि को अच्छी तरह से पता है। मनुष्य की वह जीवन-शक्ति जो विपरीत परिस्थितियों में भी उसे हौसला नहीं खोने देती, उसका वह नैतिक साहस जो सबकुछ ख़त्म हो जाने पर भी अपने

ईमान से समझौता नहीं करने देता, मनुष्य की वह बौद्धिकता जो चेतना को जागृत रखती है; के प्रति कुँवर नारायण आशान्वित हैं-

"उसकी लटकी हुई छाती, धँसा हुआ पेट, झुके हुए कन्धे, वह

कौन है हमेशा जिसकी हिम्मत नहीं केवल घुटने तोड़े जा सके?

उसके ऊँचे उठे सिर पर एक बोझ रखा है

काँटों के मुकुट की तरह

बस इतने ही से पहचानता हूँ

आज भी उस मनुष्य की जीत को।"[13]

मनुष्य की जिजीविषा कुँवर नारायण को आकर्षित करती है। आज मनुष्य को मनुष्य न रहने देने के लिए हर तरह से कोशिश की जा रही है। राजनीतिक दलों द्वारा उसे सांप्रदायिक बनाया जा रहा है ताकि एक दूसरे के मन में, एक दूसरे के खिलाफ़ पलते नफ़रत का फायदा ये दल उठा सकें। बाज़ार द्वारा मानवीय जीवन-मूल्यों को कुचला जा रहा है। धार्मिक स्थलों द्वारा अंधविश्वास और आडंबर को बढ़ावा दिया जा रहा है। कुल मिलाकर ऐसी स्थितियाँ पैदा की जा रही हैं जिसमें मनुष्य, मनुष्य न रह सके। बावजूद इसके गाहे-बगाहे हमें मनुष्य के साहस की ऐसी कोई न कोई तस्वीर दिख ही जाती है जो हमें मानवता के ज़िंदा होने का प्रमाण देती है। कुँवर नारायण की कविता का सम्मेदीन हमारे ही समाज से ताल्लुक रखता है; वह जानता है कि भ्रष्टाचार से लड़ते हुए भले ही वह मर जाए परन्तु उसकी यह लड़ाई जिस नैतिक साहस के उजाले को जन्म देगी, वह युगों-युगों तक भ्रष्टाचार के खिलाफ़ लड़ता रहेगा। मनुष्य में कुँवर नारायण का विश्वास ही है जिसने सम्मेदीन को गढ़ा है।

कुँवर नारायण देशकाल की सीमा में बँधकर कविता नहीं लिखते हैं। मानवता को पोषण देने वाली ख़ुराक उन्हें जिस देश के जिस काल में मिल जाती है वे उसे उठाकर अपने समय में ले आते हैं। यही कारण है कि वे कभी उपनिषदों की यात्रा करने लग जाते हैं, कभी बौद्ध काल में पहुँच जाते हैं तो कभी सरहपा और कबीर को अपने समय में ले आते हैं। वे नहीं चाहते हैं कि मनुष्य सिर्फ़ दैहिक-दैनिक स्तर पर जीवन जिये। वे पाठकों को अपनी कविताओं द्वारा बार-बार यह अहसास दिलाते हैं कि "ग़लत जीने से/ सही बातें ग़लत हो जाती हैं- सच्चाइयाँ झूठ लगतीं/ अच्छइयाँ गुनाह/ धर्म पाप हो जाता/ ईश्वर आततायी"[14] कुँवर जी की कविताएँ बंधी-बंधाई लीक से अलग चलने के लिए मनुष्य को प्रेरित करती हैं।

एक मनुष्य के रूप में हमारी पहचान क्या होनी चाहिए? किसी जाति, क्षेत्र या समुदाय तक सीमित? या जीवन की संभावनाओं को तलाशते एक सर्जक के रूप में। निश्चय ही मानवीय जीवन की संभावनाओं को वही तलाश सकता है जो जाति, धर्म की सीमाओं से ऊपर उठ सके और हमारे समय का यथार्थ यह है कि ज्यादातर मनुष्य जाति, धर्म, समुदाय, क्षेत्रवादिता आदि में उलझे हुए हैं। कुँवर जी को इंसान का यह पतनोन्मुख रूप दुःखी करता है। वे अपने सवालों से मानवीय जज्बातों को झकझोरना चाहते हैं-

"सच बताइए

अगर इन्सान ही हूँ

तो इतनी अपमानित क्यों है

इतनी बड़ी सच्चाई?"[15]

मनुष्य का मनुष्यता से दूर होना, उसकी वास्तविक पहचान से दूर होना है। एक आदमी जब अपनी आदमियत से दूर होता है तो वह अपने भीतर बहुत कुछ मार रहा होता है। मनुष्य की

मूल प्रवृत्ति उसकी इंसानियत है परन्तु आज का मनुष्य भौतिक इच्छाओं की पूर्त्ति में अपने अंदर की इंसानियत को रोज़-ब-रोज़ मारता है। मनुष्य की सफलता को मापने के तमाम भौतिकवादी मापदंडों को कुँवर जी नकारते हैं और प्रेम तथा करुणा को मनुष्य होने की अनिवार्य शर्त के रूप में स्वीकारते हैं। उन्हें वे तमाम तर्क फ़िजूल लगते हैं जो हत्या को जायज ठहरायें।

"तुम जो बेदर्दी से हत्याएँ कर सकते हो

क्या किसी का दिल भी जीत सकते हो?

अगर 'हाँ', तो तुम हत्यारे नहीं हो सकते :

अगर 'नहीं', तो तुम आदमी नहीं हो सकते।"[16]

कुँवर जी जानते हैं, इंसान होना सिर्फ़ मांस और हड्डी के लोथड़े का होना नहीं है। इंसान होने के लिए एक पूरी प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है। करुणा को अपने हृदय में प्रश्रय देना पड़ता है। किसी के दिल को जीतने का काम वही कर सकता है जिसके हृदय में करुणा का वास हो और जो करूणाशील होगा, जो प्रेमी होगा वह किसी की हत्या नहीं कर सकता। हत्या को बहादुरी समझने वाली मानसिकता कवि को दुःख पहुँचाती है। हादसों की पुनरावृत्ति हमारे समय का एक काला सच है। रोज के अखबारों को अगर हम पढ़ें तो पाएँगे कि बेगुनाह मारे जा रहे हैं। कुँवर जी को इन हत्यारों के इंसान होने पर संदेह है। इनकी पहचान पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए कवि कहते हैं-

"कौन हो तुम? सोच कर बताओ

अगर सोच सकते हो, इतनी आसान भाषा में

कि दम तोड़ता बच्चा भी समझ सके

तुम्हारी बहादुरी

और अपनी क़ुर्बानी का मतलब...”[17]

कुँवर जी मनुष्य को उदात्त रूप में देखने के आकांक्षी हैं। मनुष्य जो जिजीविषा से भरा हो, जिसकी आँखों में अक्षय जीवन की ललक हो, जो इन नश्वर इन्द्रियों से परे जाकर सोचता हो। ठीक वैसे जैसे कभी नचिकेता ने सोचा था। मनुष्य, जो विपरीत परिस्थितियों में जीवन की संभावनाओं का सर्जक हो। ठीक वैसे ही जैसे किसी काल में कुमारजीव हुआ था। कुँवर नारायण को मनुष्य के उस रूप की तलाश है जो अपना प्रकाशपुंज स्वयं बने-

“तेरे भीतर घिरा अँधेरा

दूर न होगा सूर्य, चन्द्र से।

तुझको अपने भीतर

नया प्रकाश चाहिए।”[18]

यह नया प्रकाश मनुष्य के आत्मिक विकास से ही संभव है। कुँवर जी मानवीय व्यक्तित्व को आत्मा की रोशनी से आलोकित देखना चाहते हैं। वह जानते हैं कि यह आलोक ही व्यक्ति को सृजनशील बना सकता है। मनुष्य के भीतर बैठे स्रष्टा को कवि जागृत भी करना चाहते हैं और उसका विकास भी करना चाहते हैं। कवि जानते हैं कि मनुष्य की आत्मचेतना सच्चिदानंद स्वरूप है। बस अपने मन को संयमित करने भर की देर है, मनुष्य अपने भीतर के उस उजाले से परिचित हो सकता है जो दुनिया के किसी प्रकाश पुंज से ज़्यादा प्रकाशमान है। कुँवर नारायण मनुष्य पर यकीन करते हैं। उन्हें मनुष्य के साहस पर विश्वास है। उन्हें इस बात का यकीन है कि दुनिया में

कोई भी दुःख चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, वह मनुष्य के साहस से बड़ा नहीं हो सकता। इस यकीन को कुँवर जी अपनी कविताओं में बार-बार दोहराते हैं-

"कोई दुःख

मनुष्य के साहस से बड़ा नहीं-

वही हारा

जो लड़ा नहीं"[19]

कुँवर जी जिस लड़ाई की बात कर रहे हैं उसमें सबसे पहले अपने अंतर्द्वंद्वों से लड़ना पड़ता है। यह एक नैतिक युद्ध है जो हमारी ही आत्मा को हमारी ही इन्द्रियों से लड़ना पड़ता है। कुँवर जी अपनी कविताओं में जो प्रश्न उठाते हैं वे व्यापक अर्थों में वह परिस्थितियाँ हैं जिनका सामना मनुष्य रोज के जीवन में करता है, परन्तु जीवन-भर उन प्रश्नों से नज़रें बचाता फिरता है। ये वे प्रश्न हैं जो हमारी ज़िन्दगी में शामिल हैं परन्तु हम उनकी ओर ध्यान नहीं देना चाहते। कुँवर नारायण की कविता उन प्रश्नों को यकायक हमारे सामने लाकर खड़ा कर देती है।

बहरहाल, ऐसे वक्त में जब घृणा, विद्वेष और बर्बरता इस दुनिया को अपना शिकार बना रही है, जब व्यक्ति अपनी सीमाओं को निरंतर संकुचित करता जा रहा है कुँवर जी बार-बार मनुष्यता की ओर लौटते हैं। खोयी हुई मनुष्यता को पुनः स्थापित करने के लिए वे कभी इतिहास में जाते हैं, कभी मिथक की यात्रा करते हैं। मनुष्य के पुनरुत्थान और पुनर्निर्माण के संकेत उनकी कविता में बिखरे पड़े हैं। तमाम मानवीय विसंगतियों से कुँवर जी वाकिफ़ हैं। बावजूद इसके, वे बारम्बार अपनी कविता द्वारा प्रेम का बीज मनुष्य के भीतर बोते हैं। इसकी एक बड़ी वजह यह है कि उन्हें मनुष्य की जीवन-शक्ति पर गहरा विश्वास है। उनकी कविताओं में मनुष्य के प्रति निराशा का भाव नहीं दिखायी देता है।

संदर्भ सूची:

1. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं, पृष्ठ-7
2. वही, पृष्ठ-48
3. वही, पृष्ठ-12
4. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-15
5. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं, पृष्ठ-13
6. कुँवर नारायण, अपने सामने, पृष्ठ-17
7. कुँवर नारायण, शब्द और देशकाल, पृष्ठ-64
8. कुँवर नारायण, चक्रव्यूह, पृष्ठ-129-130
9. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-93-94
10. ओम निश्चल, कविता की सगुन इकाई कुँवर नारायण, पृष्ठ-11
11. कुँवर नारायण, इन दिनों, पृष्ठ-55
12. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं, पृष्ठ-45
13. कुँवर नारायण, अपने सामने, पृष्ठ-32
14. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-22
15. कुँवर, नारायण, इन दिनों,पृष्ठ-98
16. कुँवर नारायण, हाशिए का गवाह, पृष्ठ-36
17. वही, पृष्ठ-36
18. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-97
19. कुँवर नारायण, इन दिनों, पृष्ठ-101

3.2 परम्परा और नवीनीकरण

'परम्परा' का संबंध अतीत से भी है और वर्तमान से भी। जब कवि और कविता से 'परम्परा' के संबंधों के संदर्भ में हम विचार करते हैं तो यह सवाल उठता है कि क्या कवि अपनी कविता द्वारा परम्परा को नवीन अर्थ भी प्रदान कर रहा होता है? क्योंकि कवि जब परम्परा से कुछ ग्रहण करता है तो यह आवश्यक नहीं है कि वह उसे ज्यों का त्यों ग्रहण और अभिव्यक्त करे। परम्परा के विषय में महादेवी वर्मा लिखती हैं- "मानव जीवन की परम्परा विकास और ह्रास का लेखा-जोखा या इतिवृत्त मात्र नहीं होता। वह तो मानव के चिंतन, जीवन-दृष्टि तथा रागात्मक विस्तार का ऐसा संयोजन है जो जीवन को ऊर्ध्वतर, सुन्दर से सुन्दरतर बना सकता है।"[1] कुँवर नारायण की कविता को इस बात के प्रमाण के रूप में देखा जा सकता है। उनकी कविताएँ हमें परम्परा के विषय में फ़र्क तरह से सोचने के लिए प्रेरित करती हैं। कुँवर नारायण की कविताएँ केवल तत्काल की फ़िक्र में रची गयी कविताएँ नहीं हैं बल्कि उसमें आने वाले समय की चिंता भी है और एक बेहतर दुनिया की आकांक्षाएँ एवं आशाएँ भी हैं। इसलिए कवि परम्परा का अपनी सृजनात्मक क्षमता के अनुरूप प्रयोग करते हैं। उदाहरण के रूप में 'आत्मजयी' के लिए जब कवि उपनिषदों की ओर गये तो उनके मन में यह बात रही थी कि "नचिकेता का जीवन और मृत्यु संबंधी अनुभव उतना ही आधुनिक भी है जितना वह प्राचीन है और उसके अनुभवों में जीवन के प्रति गहरी आस्था का भाव है।"[2] ऐसे में नचिकेता को अपने काव्य का पात्र बनाने का उद्देश्य यह भी रहा होगा कि उसके माध्यम से कवि आधुनिक प्रश्नों को स्वर दे सकें और उन सूक्ष्म अनुभूतियों को तीव्रतम रूप में अभिव्यक्त कर सकें जो प्रायः काव्य की रचना-प्रक्रिया के दौरान चेतना से शब्द तक आते-आते अपनी धार और पैनेपन को खोने लग जाती हैं। कुँवर नारायण जब कविता लिख रहे होते हैं तो वे शब्दों के माध्यम से जीवन को देख रहे होते हैं। वे परम्परा का रचनात्मक उपयोग करते हुए वर्तमान और भविष्य की निर्मिति का मार्ग प्रशस्त करते हैं-

"उद्गम!

तुमसे मिले ताप ने, शीत ने, जल ने

मुझको भविष्य दिया :

सारांश

अब मैं उन चेष्टाओं की

शेष पूँजी हूँ

जिसे तुम नहीं समय प्राप्त करेगा।"[3]

कवि का एक पाँव यदि वर्तमान की ड्योढ़ी पर रहता है तो दूसरा अतीत के गलियारे में और नज़रें भविष्य पर। इतिहास पर आधारित कुँवर जी की किसी भी कविता का मूल्यांकन करने पर एक समानता देखने को मिलती है कि कवि घटनाओं से अधिक उन जीवन अनुभवों को महत्त्व देते हैं जो उस घटना से प्राप्त किया जा सकता है। चाहे कुमारजीव हो या खुसरो, चाहे सरहपा हो या कबीर उसे अपने समय में लाकर जिया जा सकता है। या उनके समय में जाकर अपने जीवन के लिए कुछ मूल्यवान तलाशा जा सकता है। कुँवर जी ने यही किया उन्होंने सदियों के ऐतिहासिक अनुभव से वर्तमान को गढ़ने की कोशिश की। कुँवर जी इतिहास को केवल तिथियों, आँकड़ों और घटनाओं की परिधि में रखकर सोचने से इंकार करते हैं। वे इतिहास के विषय में लिखते है- "इतिहास-बोध का अर्थ अगर केवल तिथियों, आँकड़ों, घटनाओं और नामों का संग्रह मात्र नहीं है तो उस जीवन-विवेक और उन जीवनमूल्यों को सबसे पहले सोचें जो मनुष्य के सदियों के ऐतिहासिक अनुभव से निकलते हैं: जिनके बिना जीवन की रक्षा संभव नहीं, और जो हमें अपने, दूसरों और प्रकृति के साथ सामंजस्य बैठाते हुए शांति से जीना सिखाते

हैं।"[4]यह शांति से जीना युद्धों के इतिहास से भी सीखा जा सकता है बल्कि युद्धों के इतिहास से अधिक प्रभावी ढंग से सीखा जा सकता है। युद्ध की विभीषिका केवल दर्द नहीं देती वह सीख भी देती है, युद्ध की पुनरावृत्ति न करने की। धरातल पर युद्ध बाद में होता है हमारी मानसिकता में वह पहले घटित होता है। हिंसात्मक मनोवृत्तियाँ और सृजन एक दूसरे के प्रतिगामी हैं। इस दुनिया ने दो विश्वयुद्धों की त्रासदी को देखा है, बावजूद इसके यह युद्ध की ओर बार-बार लौटती है। युद्ध की ओर लौटने की यह मनोवृत्ति मानवता के लिए घातक है। कुँवर जी इसे एक असभ्य अतीत की ओर लौटना मानते हैं-"मैं इतिहास के माध्यम से अपने समय को सोचता हूँ। हमारे समय में हमारा इतिहास भी शामिल है। छोटे बड़े युद्धों की पुनरावृत्तियाँ इसका सबसे बड़ा प्रमाण हैं। युद्धों को पीछे छोड़कर हम आगे नहीं बढ़ रहे। बार-बार युद्धों की ओर लौटना, एक असभ्य अतीत की ओर लौटना है।"[5]यह भी अजीब विडम्बना है कि आज संसार में देशों की शक्ति का अंदाजा लगाने का एक आधार उसकी परमाणु शक्ति को भी बनाया जाता है। आज दुनिया में सबसे ज़्यादा शक्तिशाली देश कौन है? वह जिसके पास सबसे अधिक परमाणु हथियार हैं! अगर विध्वंस की शक्ति का होना ही शक्तिशाली होने की कसौटी है तो इसपर पुनर्विचार की आवश्यकता है। शक्तिशाली की जो परिभाषा हमने बनायी है, कुँवर जी का लेखन उसपर पुनर्विचार का रास्ता सुझाता है।

कुँवर जी की कई कविताएँ ऐतिहासिक चरित्रों पर आधारित हैं। उनमें से एक प्रसिद्ध कविता है- "आजकल कबीरदास"। यह कविताउस कबीर पर आधारित है जिसे इस बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि वह 'दास' है या 'प्रसाद', 'नाथ' है या 'दीन'। जाति या ओहदे से फ़र्क़ न पड़ना कुँवर जी को कबीर की ओर आकर्षित करता है। मनुष्य की सामूहिक पहचान को ढूँढते कुँवर नारायण का कबीर से किया गया यह संवाद दृष्टव्य है-

"अक्खर खड़ी बोली में बोले-

"कोई फ़र्क़ नहीं इसमें

कि मैं 'दास' हूँ या 'प्रसाद'

'नाथ' हूँ या 'दीन'

'गुप्त' हूँ या 'नारायण'

या केवल एक समुदाय, हिन्दू या मुसलमान,

या मनुष्य की सामूहिक पहचान

ईश्वर-और-अल्लाह,

या केवल एक शब्द में रमण करता

पूरा ब्रह्मांड,

या सारे शब्दों से परे एक रहस्य"[6]

कबीर की पहचान न किसी जाति की वजह से थी, न किसी धर्म की वजह से। एक मनुष्य द्वारा जाति-धर्म की सीमाओं का यह अतिक्रमण कुँवर नारायण को अपने समय के लिए ज़रूरी लगा होगा, तभी वे कबीर को मध्यकाल से अपने समय में खींच लाते हैं। कबीर को देखकर, जब वे अपने युग को देखते हैं तो निराश होते हैं क्योंकि आज हमने अपने समाज को जाति और धर्म की दीवारों में कैद कर दिया है। आज के मनुष्य की सामूहिक पहचान को तलाशना एक दुष्कर कार्य है। कुँवर जी कबीर की परम्परा का उपयोग अपने युग की बेहतरी के लिए करते हैं-

"देखकर अपना ज़माना

यकीन नहीं होता कि अब बीत गया

उनका ज़माना,

कि अब वे कहीं नहीं,

न काशी में, न मगहर में

कि अब वे केवल इसे जानने में हैं

कि वस्तुगत होकर देखना

वस्तुवत होकर देखना है,

सही को जानना

सही हो जाना है।"[7]

कवि अपने समय में कबीर को ढूँढते हैं। उन मूल्यों को ढूँढते हैं जिसके वाहक थे कबीर। किसी भी लोभ-लाभ से ऊपर उठकर सच को कहने का साहस थे कबीर। और, कुँवर जी जानते हैं कि हमारे समय को इस साहस की कितनी ज़रूरत है।

इसी प्रकार ऐतिहासिक चरित्र पर आधारित कुँवर जी की एक प्रसिद्ध कविता है- 'अमीर खुसरो'।अमीर खुसरो को अबतक हमने जिस रूप में जाना है, कुँवर जी उससे अलग नज़रिये से खुसरो को देखते हैं। उनकी नज़र में खुसरो सिर्फ़ पहेलियों और मुकरियों के रचनाकार नहीं थे। खुसरो कवि के लिए ख़ास हैं क्योंकि ऐसे समय में खुसरो संगीत और कविता की भाषा में बोल रहे हैं जिस समय दिल्ली की तख्त पर बैठने के लिए खूनी खेल चल रहा है। हमारी पीढ़ी को अमीर खुसरो का परिचय कराते हुए कुँवर नारायण लिखते हैं-

"भूल जाना मेरे बच्चों कि खुसरो दरबारी था।

वह एक ख़्वाब था

जो कभी संगीत

कभी भाषा

कभी दर्शन से बनता था

वह एक नृशंस युग की सबसे जटिल पहेली था

जिसे सात बादशाहों ने बूझने की कोशिश की!

खुसरो एक रहस्य था जो

एक गीत गुनगुनाते हुए

इतिहास की एक बहुत कठिन डगर से गुज़र गया था।"[8]

संवाद की शैली में लिखी गयी इस कविता में कई सवाल हैं। उन सवालों से गुज़रता हुआ पाठक बादशाहों की जीत की निरर्थकता को भी महसूस कर सकता है और कवि की आज़ाद ख़याली की महत्ता को भी। कुँवर नारायण की कविताएँ हमें इतिहास का पुनर्पाठ करना सिखाती हैं। इतिहास सिर्फ़ युद्धों, राजाओं और शासकों का दस्तावेज नहीं है। कौन किसको पराजित कर गद्दी पर बैठा इससे ज़्यादा महत्त्व के जीवनानुभव इतिहास के मार्फ़त प्राप्त किये जा सकते हैं। कुँवर नारायण की कविताओं में उन्हीं मूल्यवान जीवनानुभवों की तलाश है। इतिहास लेखन के एकतरफ़ा तरीके से भी कुँवर जी को आपत्ति है।उनका मानना है कि इतिहास को देखने की जगह समय-समय पर बदलते रहना चाहिए। वे लिखते हैं-"अगर हमें इतिहास में उसके सांस्कृतिक और

कलापक्ष कम दिखायी देते, या नहीं दिखायी देते, तो यह एक तरह की सांस्कृतिक कम निगाही की निशानी है। लड़ाइयों, चढ़ाइयों और मारकाट की नगाड़ाचीर नौटंकी इतिहास का पूरा मतलब नहीं है।"[9]

ऐतिहासिक संदर्भ वाली कविताओं में कई कविताएँ ऐसी हैं जिनमें या तो कुँवर जी के मुलाक़ात के प्रसंग हैं या किसी स्थान की स्मृति है। व्यक्ति और स्थान की स्मृतियों को कुँवर नारायण ने अपनी कविताओं में जीवंत बना दिया है। उनकी पुस्तक 'हाशिए का गवाह' में संग्रहित दो कविताएँ 'नाज़िम हिकमत के साथ-1955' और 'पाब्लो नेरुदा से एक भेंट-वारसा 1955' उनकी पहली विदेश यात्रा में विश्व के दो प्रख्यात कवियों से हुई मुलाक़ात का वर्णन है।यह काव्यात्मक वर्णन इसलिए और भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यह सिर्फ़ आत्मीय मुलाक़ात का ज़िक्र नहीं है बल्कि उन मुलाकातों की स्मृति के बहाने इतिहास को टटोलने की कोशिश भी है।पाब्लो नेरुदा को देखकर कवि के मन में उनकी प्रसिद्धि से पहले उनका वह व्यक्तित्व आता है जो समूची पृथ्वी को सबका आवास मानता है तथा सबके सकुशल और निश्शंक होने की कामना करता है। कुँवर नारायण की पाब्लो नेरुदा से यह मुलाक़ात वारसा में हुई है। यह मुलाक़ात उस वक्त हुई थी जब 'एक युद्धाहत नगर'(वारसा) जीवन की ओर तेजी से लौट रहा था। ध्यातव्य है कि युद्ध की विभीषिका से त्रस्त वारसा अगर तेजी से जीवन की ओर लौट सका तो उसमें पाब्लो नेरुदा जैसे कवियों और चिंतकों का भी योगदान है। वह पाब्लो नेरुदा जिनके लिए भारत का परिचय गाँधी का देश था। कुँवर जी ने जब उन्हें यह बताया कि वे भारतीय हैं तब उनकी पहली प्रतिक्रिया को कविता में ढालते हुए कुँवर जी लिखते हैं-

"कुछ देर के लिए वे

डूब गए थे अपने में।

क्या सोच रहे थे वे-

'फ़क़ीर दार्शनिकों का देश ? ..."

बोले-"ओह, गाँधी का देश।""[10]

पाब्लो नेरुदा द्वारा भारत को 'गाँधी का देश' के रूप में याद करना और उस याद को कुँवर जी द्वारा अपनी कविता में याद करना कितना सुखद है एक ऐसे समय में जब इस दुनिया ने हिंसा की परिणति के रूप में दो विश्वयुद्धों की त्रासदी को देखा।ग़ौरतलब है कि गाँधी केवल एक व्यक्ति नहीं हैं, वे उस वैचारिक चेतना के प्रतिनिधि हस्ताक्षर हैं जिसमें अहिंसा अनिवार्य जीवन-मूल्य के रूप में स्वीकृति पाती है।

कुँवर जी के इतिहासबोध का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि उनका इतिहासबोध सिंहासनों और शासकों से ज़्यादा गली-कूचों और उपेक्षित लोगों से निर्मित है। इतिहास के रुख को बदलकर देखने के हिमायती कुँवर नारायण के विषय में ओम निश्चल ने ठीक लिखा है कि "वे यह स्वीकारते हैं कि गली-कूचों ने उनमें ज्यादा इतिहासबोध जगाया है। उनकी कविताओं में इसकी शिनाख़्त मौजूद है।"[11] कुँवर जी को यह विश्वास है कि ग़ालिब और मीर, तुलसी और कबीर के निशान आज भी सत्ता के गलियारे में नहीं मिलते वे गली-कूचों में ही मिलेंगे। कुँवर जी की एक कविता का शीर्षक है- 'अतीत के गली कूचों में'। यह कविता दरअसल इतिहास के गली-कूचों में पल रही संभावनाओं की तलाश है-

"शाही महलों से दूर

इतिहास के गली-कूचों में भटकती है

एक आवारा सनक

कि इन्हीं में कहीं रहते हैं आज भी

ग़ालिब और मीर,

कि हाथ में लिये लकुटिया

बीच बज़ार में खड़ा वह अधनंगा फ़क़ीर

हो सकता है कबीर,

कि सीकरी से दूर किसी नदी के घाट पर

हो सकती है किसी

तुलसी या सूर की कुटिया..."[12]

कुँवर जी की ऐसी कई कविताएँ हैं जो इतिहास को देखने और समझने का अलग नज़रिया प्रदान करती हैं। वे अपनी कविताओं में ऐतिहासिक चरित्र के जीवन की घटनाओं से छेड़-छाड़ किये बगैर कथा को इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि वे घटनाएं अबतक जिन वजहों से इतिहास में जानी जाती थीं, उससे इतर भी अर्थ देने लग जाएँ। उदाहरण के लिए उनकी कृति 'कुमारजीव' को लिया जा सकता है।ग़ौरतलब है कि कुमारजीव एक ऐतिहासिक पात्र है, जिसका समयकाल 344-413 ई. है। इतिहास में कुमारजीव बौद्ध ग्रंथों के अनुवादक और एक विद्वान् विचारक के रूप में ख्यात है। कुँवर नारायण कुमारजीव के जीवन की घटनाओं में बगैर कोई तब्दीली किये, उसे हमारा समकालीन बना देते हैं। ऐसा करने के पीछे संभवतः कुँवर जी का यह उद्देश्य रहा होगा कि वे इतिहास के मूल्यवान जीवन अनुभवों से हमारे वर्तमान और भविष्य को बेहतर बना सकें। 'कुमारजीव' की भूमिका में कुँवर जी ने लिखा भी है- "इसमें घटनाओं से

अधिक जीवन की कुछ सच्चाइयों को प्रमुखता दी गयी है, जो किसी भी समय में माने रख सकती हैं।"[13]

कुँवर नारायण के लिए बुद्ध या कुमारजीव के जीवन की घटनाओं से अधिक उन विचारों का महत्त्व है जिनसे उनका जीवन संचालित है। कवि जानते हैं कि बुद्ध या कुमारजीव कभी नहीं मरते, वे कभी मर ही नहीं सकते क्योंकि मरता तो शरीर है, विचार तो अजर-अमर हुआ करता है। ये विचार ही हैं जो किसी जीवन को सार्वकालिक बनाते हैं। कवि कहता है कि जैसे कुमारजीव ने तथागत को जिया था, ठीक उसी प्रकार कुमारजीव को भी जिया जा सकता है-

"वह एक विचार का जीवन है

उसे जिया जा सकता है कभी भी

उसके समय में जा कर

या उसे अपने समय में ला कर..."[14]

बुद्ध से कुमारजीव और कुमारजीव से कुँवर नारायण की विचार प्रणाली कहीं-कहीं जुड़ी प्रतीत होती है। युद्धोन्मत दुनिया में 'बुद्धं शरणं गच्छामि...' कहने के पीछे जो विश्वास है,वह बुद्ध, कुमारजीव और कुँवर नारायण की वैचारिक साझेदारी को दर्शाता है। जब कुमारजीव यह कहता है कि "मैं तथागत के साथ हज़ारों साल लम्बी/ एक महायात्रा पर निकला हूँ"[15] तो यह फ़र्क़ करना मुश्किल हो जाता है कि यह यात्रा सिर्फ़ कुमारजीव की है या कुँवर नारायण भी इसमें शामिल हैं। किसी भी साधक की साधना या कलाकार की कला की उत्कृष्टता का एक पैमाना यह भी है कि वह अपने समय के समानांतर एक प्रतिसमय रचता है। वह वर्तमान में शामिल भी होता है और जन्म-जन्मान्तर तक विकसित भी होता रहता है। यह विकसनशील प्रवृत्ति उसे स्थान और काल विशेष की सीमाओं से मुक्त करता है। यही उसे सार्वदेशिक और सार्वकालिक बनाता है।

कुँवर जी इतिहास के पन्नों को कुछ इस तरह पलटते हैं कि उसके परंपरागत अर्थ और मायनों में अतिरिक्त संदर्भ जुड़ जाते हैं।

कुँवर जी ने अपने युग-संदर्भों के अनुसार इतिहास से विषय-वस्तु को उठाया है। कुँवर नारायण अपनी कई कविताओं में दो पीढ़ियों के बीच 'सेतु' के मानिंद दिखाई देते हैं। वे जब अतीत में जाते हैं, उस समय भी उन्हें वर्तमान याद रहता है इसलिए जब उनकी कविताओं में इतिहास आता है तो वह परंपरागत ढंग से नहीं आता। पाठ्यपुस्तकों में इतिहास वर्णन प्रायः वीरगाथाओं के इर्द-गिर्द घूमता है। वे इतिहास से उन प्रतीकों को चुनते हैं जो हमारे आज के जीवन को अर्थ दे सकें। कुँवर नारायण घटनाओं से ज़्यादा प्रतीकों और उन घटनाओं में मौजूद संवेदनात्मक अवधारणाओं को महत्त्व देते हैं। यह आसान नहीं है कि कोई कवि शताब्दियों पहले की घटना को इस तरह से अभिव्यक्त करे कि तब की घटना, आज के जीवन और राजनीतिक विडम्बनाओं को स्वर देने लग जाए। युवा आलोचक पंकज कुमार बोस इतिहास संबंधी कुँवर नारायण की कविताओं के विषय में लिखते हैं कि "कुँवर नारायण जरूरत भर ही इतिहास को कविता की भाषा में बरतते हैं और फिर एक ओट ले लेते हैं ताकि न इतिहास की धारा बाधित हो और न ही कविता का प्रवाह।"[16]इतिहास संबंधी विषयों पर कुँवर नारायण का लिखा एक प्रतिमान गढ़ता है, जिसमें हम देख सकते हैं कि कैसे घटनाओं से अधिक जीवन-अनुभव महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। ये जीवन-अनुभव प्रायः ऐतिहासिक घटनाओं को वर्णित करते वक्त इतिहासकारों की नज़र से ओझल रहा करते हैं। एक कवि जब इतिहास की इस रिक्तता की पूर्ति करता है तो वह इतिहास का पुनर्पाठ भी कर रहा होता है।

आज मानवता पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। ऐसे में यह ज़रूरी है कि हम इतिहास के उन पृष्ठों को दुबारा खोलें जिनमें मनुष्यता के अनगिनत उदाहरण हैं। यह ज़रूरी है कि इतिहास का पाठ इस तरह से हो कि मनुष्यता के रंग उभरकर सामने आयें।मानवता के वर्तमान और भावी

संकटों से बाहर निकालने में इतिहास भी कारगर हो सकता है अगर हम उसका सही इस्तमाल करें। ध्यातव्य है कि इतिहास पुनरावृत्ति की गुंजाइश भी रखता है और जो अवांछित है उसे छोड़, आगे बढ़ जाने की अपेक्षा भी करता है। बकौल कुँवर नारायण- "मनुष्य को केवल 'स्मृति' नहीं 'विस्मृति' भी दी गई है-और दोनों का ही जीवन को स्वस्थ रखने में आत्यन्तिक महत्त्व है। क्या भूलें क्या याद रखें यह विवेक की बात है, जिसका सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धिमत्ता से है। अगर हम आज आपस के मधुर सम्बन्ध चाहते हैं तो हमें इतिहास में जो सब हुआ उसमें से बहुत कुछ को भूल जाना पड़ेगा; और ऐसे बहुत कुछ को न केवल याद रखना होगा, बल्कि बार-बार दुहराते रहना होगा, जो हमारे बीच मैत्री और प्यार को बढ़ावा दे-न कि नफ़रत और हिंसा को।"[17]कुँवर जी अपनी कविताओं में मानवता के इतिहास को बार-बार दोहराते हैं। उनकी कविताएँ अपनी सम्पूर्ण शक्ति से मनुष्यता के साथ खड़ी हैं।कुँवर जी की कई कविताएँ दार्शनिक पृष्ठभूमि से हैं। परन्तु इन कविताओं में व्यक्त कुँवर जी की बौद्धिकता कभी भी यांत्रिक नहीं लगती है। कवि की वैचारिक चेतना का उत्स जीवन-अनुभव में है।मनुष्य की संस्कृति का इतिहास दरअसल उसकी चेतना का इतिहास भी है। मनुष्य की इस विकासशील चेतना का आग्रह कुँवर नारायण की कविताओं में है।

सिर्फ़ इतिहास और मिथक आधारित कविताओं में ही यह प्रयोगधर्मिता नहीं है बल्कि जब कुँवर नारायण सिनेमा या संगीत जैसी कलाओं को देख-सुन रहे होते हैं, उसपर बतिया रहे होते हैं तब भी उनके इस प्रयोगधर्मी स्वभाव की झलक देखने को मिलती है।सिनेमा के विषय में यह आम धारणा है कि उसका संबंध व्यवसाय से होता है। आज जब सिनेमा का कथ्य और उसकी भाषा स्वयं को व्यावसायिक बनाने के चक्कर में फूहड़ किस्म के मनोरंजन का साधन बनता जा रहा है उस समय में कुँवर नारायण सिनेमा पर केन्द्रित एक पुस्तक लिखते हैं- "लेखक का सिनेमा" और इसका प्रारंभ यह कहते हुए करते हैं- "बढ़ती हुई व्यावसायिकता और स्पर्धा से जो अभी भी बचे हुए हैं उनको समर्पित"[18]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कुँवर नारायण जब अपनी कविता में किसी कथ्य या भाव को परंपरा से ग्रहण करते हैं तो उसे ज्यों का त्यों नहीं लेते उसमें आधुनिक संदर्भों का अनुप्रयोग कर उसे नवीन अर्थवत्ता प्रदान करते हैं। इतिहास पर आधारित कुँवर नारायण की कविताएँ इतिहास के पुनर्पाठ का मार्ग प्रशस्त करती हैं। कुँवर नारायण अपनी कविताओं में इतिहास को इस तरह बरतते हैं कि उससे मानवीय संबंधों को ऊष्मा और उर्जा मिले। कुँवर नारायण ने अपनी प्रतिभा से परंपरा का पुनःसृजन किया है। वे परंपरा के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हैं और जो कुछ मनुष्य के लिए हितकारी है, जिस रूप में हितकारी है उसे उस रूप में ग्रहण करते हैं। ध्यातव्य है कि अज्ञेय की तरह कुँवर नारायण ने भी"परंपरा की एक विकसित परिभाषा वर्तमान के साथ अतीत की संबद्धता और तारतम्यता"[19] को माना है।

संदर्भ सूची:

1. महादेवी वर्मा, भारतीय संस्कृति के स्वर, पृष्ठ-41
2. कुँवर नारायण, शब्द और देशकाल, पृष्ठ-51
3. कुँवर नारायण, परिवेश हम-तुम, पृष्ठ 47-48
4. कुँवर नारायण, आज और आज से पहले, 69-70
5. कुँवर नारायण, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-125
6. कुँवर नारायण, इन दिनों, पृष्ठ-16
7. वही, पृष्ठ-18
8. वही, इन दिनों, पृष्ठ-136
9. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-143
10. कुँवर नारायण, हाशिए का गवाह, पृष्ठ-20
11. ओम निश्चल, कविता की सगुन इकाई, पृष्ठ-115
12. कुँवर नारायण, हाशिए का गवाह, पृष्ठ-29
13. कुँवर, नारायण, कुमारजीव, पृष्ठ-19
14. वही, पृष्ठ-27
15. वही, कुमारजीव, पृष्ठ-25
16. (सं.) ओम निश्चल, अन्वय: साहित्य के परिसर में कुँवर नारायण, पृष्ठ-387
17. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-65-66
18. (सं.) गीत चतुर्वेदी, लेखक का सिनेमा, पृष्ठ-5
19. अज्ञेय, त्रिशंकु, पृष्ठ-35

3.3 मिथकों का समकालीन संदर्भों में प्रयोग

'मिथक' अंग्रेजी के 'मिथ' का हिंदी रूपांतरण है। मिथक के संदर्भ में भिन्न-भिन्न विद्वानों की राय भिन्न-भिन्न रही है। हिंदी में सर्वप्रथम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'मिथक' शब्द का प्रयोग किया। द्विवेदी जी के शब्दों में "मिथक शब्द वास्तव में भाषा का पूरक है। सारी भाषा इसके बल पर खड़ी है। आदिमानव के चित्त में संचित अनेक अनुभूतियाँ मिथक के रूप में प्रकट होने के लिए व्याकुल रहती हैं। मिथक वस्तुतः उस सामूहिक मानव की भावनिर्मात्री शक्ति है जिसे कुछ मनोविज्ञानी आर्किताईपल इमेज (आद्यबिम्ब) कहकर संतोष कर लेते हैं"[1] ध्यातव्य है कि मिथक इतिहास से भिन्न होते हुए भी मनुष्य की सांस्कृतिक विकास-यात्रा को जानने और समझने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। यह न तो इतिहास की तरह तथ्यों पर आधृत होता है और न ही पुरातात्त्विक साक्ष्यों पर। इसकी जड़ें लोकविश्वास में हैं, इसलिए लोक पर इसका प्रभाव भी व्यापक स्तर पर होता है। यही कारण है कि राम और कृष्ण सिर्फ़ मिथक न होकर जनमानस की चेतना का हिस्सा बन गये। इस संदर्भ में शंभुनाथ जी लिखते हैं कि "मिथकों का संबंध इसी लोक समाज से है, वही मिथकों का वास्तविक निर्माता है, अन्यथा धर्मशास्त्र और राजनीति उनका अपने स्वार्थों के लिए उपयोग करते रहे हैं।"[2]

धर्मशास्त्र और राजनीति के द्वारा मिथकों की व्याख्या प्रायः किसी न किसी एजेंडे को सिद्ध करने के लिए की जाती है इसलिए ये व्याख्याएँ कई बार घातक सिद्ध हुआ करती हैं। इनकी तुलना में जब हम संस्कृत और हिंदी के कवियों द्वारा किये गये मिथकीय प्रयोग को देखते हैं तो वह ज्यादा सुखद नज़र आता है। वाल्मीकि से लेकर तुलसीदास तक, कालिदास से लेकर कबीर तक, जयदेव से लेकर विद्यापति तक और निराला से लेकर कुँवर नारायण तक कवियों ने मिथकीय कथाओं को जिस रूप में अभिव्यक्त किया उससे साहित्य का उदात्त रूप हमें देखने को मिलता है। ऐसा रूप जिसमें मूल्य चेतना है, देश के सांस्कृतिक विकास-यात्रा की झलक है, लोक

की आशाएँ और आकांक्षाएँ हैं और सृजनशीलता को बढ़ावा देती कल्पना और विश्वास हैं। साहित्य और कलाओं में मिथक के ढलने के विषय में शंभुनाथ अपनी पुस्तक 'हिंदू मिथक आधुनिक मन' में लिखते हैं- "दरअसल मिथक का साहित्य और कलाओं में ढलना उसे विशिष्ट 'एस्थेटिक फार्म' बनाता है, वे तब विशुद्ध धार्मिक आस्था के विषय नहीं रह जाते। ऋग्वेद और रामायण-महाभारत से लेकर भक्त कवियों और आधुनिक कवियों तक सभी ने मिथकों के जरिए अपना युग सत्य कहा है। उन्होंने मिथकों को दुहराया नहीं है, उनकी पुनर्रचना की है। इस तरह साहित्यिक सृजन के रूप में मिथक महत्वपूर्ण रहे हैं।"[3]

मिथक ऐतिहासिक यथार्थ नहीं है इसलिए उसे तर्क से साबित कर पाना संभव नहीं। जाहिर है कि हर युग में उसमें कल्पना का भी सन्निवेश हुआ है। बावजूद इसके प्राचीन मनुष्य के सामाजिक मूल्यों और विश्वासों को समझने के दृष्टिकोण से मिथक का विशेष महत्त्व है। प्रत्येक युग और काल में लोगों ने मिथक को अपनी-अपनी दृष्टि से देखा, उसे अपने अनुसार ग्रहण किया, उसपर सवाल उठाये। ये मिथक कई बार अविश्वसनीय प्रतीत होते हैं परन्तु इन्हें सिरे से ख़ारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि ये हमारे अचेतन मन में अपना स्थान बना चुके होते हैं। डॉ. बच्चन सिंह मिथक के विषय में लिखते हैं कि "अचेतन मन के द्वारा प्रकृति के चमत्कारिक प्रभावों की अनुभूति का कल्पनात्मक सृजन ही मिथ है। यह सृजन यथार्थ के प्रति सहज-स्फूर्त बिम्बात्मक प्रतिक्रिया है।"[4] मिथक हमें उस अतीत में ले जाता है जब प्राकृतिक घटनाओं को मानव अपने अनुभव के आधार पर समझने की कोशिश कर रहा था। तब शायद मनुष्य और प्रकृति के बीच इतना स्पष्ट अंतर न रहा हो, जितना आज है। मिथकों के विषय में डॉ. मालती सिंह लिखती हैं- "मिथक आदिम मानव द्वारा किया गया ऐसा अनुभव है जो दैविक तत्वों के इतिहास का निर्माण करता है। मिथक के ज्ञान द्वारा किसी वस्तु के मूल को जाना जा सकता है तथा मूल जान लेने का अर्थ है।"[5]

➢ कुँवर नारायण की कविता और मिथक

कुँवर नारायण एक ऐसे कवि हैं जिनकी कविताओं में आधुनिक भावबोध को महसूसा जा सकता है। उन्होंने पौराणिक कथाओं और पात्रों का चयन करते वक्त भी इस बात का ख़्याल रखा कि उन्हीं प्रसंगों को काव्य में लाया जाये जो वैचारिक चिंतन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हों। वे अपने समय के संदर्भ को कभी विस्मृत नहीं करते हैं। भारतीय दार्शनिक परंपरा में अपने समय के सवालों और द्वंद्वों को ढूँढ़ना उनकी विशेषता है। उनके विषय में सुस्मित सौरभ ने अपनी पुस्तक 'मिथक और कुँवर नारायण' में लिखा है कि "कुँवर नारायण हिन्दी की आधुनिक कविता के इतिहास में नयी कविता आंदोलन की उपज हैं लेकिन उनकी कविता का भावबोध नयी कविता की प्रचलित अवधारणाओं का निषेध करता है। उनमें कुंठा और हताशा का स्वर नहीं है। वे नयी कविता के दौर के संभवतः अकेले कवि हैं जो भारतीय मनुष्य के आधुनिक अस्तित्वबोध को दार्शनिक परंपरा में खोजने की सार्थक कोशिश करते हैं।"[6]

कुँवर नारायण दार्शनिक परंपरा की मदद से अपने समय को टटोलने वाले कवि हैं। उनकी कविता सिर्फ़ मिथकों को छूती नहीं है बल्कि मिथक के सहारे कवि की बात को व्यापकता और सार्थकता प्रदान करती है। यहाँ मिथक कवि की सृजनशीलता को नया सोपान देता है। कुँवर नारायण अतीत में जाते हैं, जीवन की सार्थकता को खोजने। कुँवर नारायण की कविताओं में मिथक के प्रयोग के विषय में शंभुनाथ लिखते हैं- "कुँवर नारायण ने मिथकों को प्रयोग की भूमि के तौर पर चुना, क्योंकि मिथक चिंतन-मनन का खुला अवसर देते हैं।"[7]वे ऐसे चरित्र का चुनाव करते हैं जिसके माध्यम से हमारे समय के द्वंद्वों को स्वर दे सकें। कुँवर जी मिथकों का प्रयोग सोद्देश्य करते हैं। वे इस सच्चाई से अवगत हैं कि मिथक का संबंध लोक से है और मिथक लोक की स्मृति में एक निश्चित प्रतीक के साथ उपस्थित रहता है। कुँवर जी उन प्रतीकों को आज के जीवन-अनुभव से जोड़ते हैं और उसे वर्तमान समय में प्रासंगिक बना देते हैं।"इन 'प्रतीकों' और

'स्मृतियों' के माध्यम से जनमानस तक पहुँचने की एक सशक्त और सांकेतिक भाषा हमारे अवचेतन में पहले से ही मौजूद है। कविता इस 'भाषा' में दूसरों से बात कर सकने की एक कला है। यह रोजमर्रा की व्यावहारिक भाषा का निषेध नहीं, उसका समय के एक ज़्यादा बड़े आयाम में विस्तार है।"[8]

कविता के क्षेत्र में कुँवर नारायण की पहली स्वतंत्र कृति 'चक्रव्यूह' (1956) है। यह लगभग 70 कविताओं का संकलन है जिसमें कुछ कविताएँ मिथकीय कथा को आधार बनाकर भी लिखी गयी हैं। अपने पहले ही संग्रह की कविताओं में समसामयिक संदर्भों की अभिव्यक्ति के लिए मिथक का चुनाव करना कवि की दिलचस्पी का पता देता है। इस संग्रह की एक कविता है 'विरासत'। इस कविता का आधार महाभारत का पात्र अभिमन्यु है। अभिमन्यु की नियति और आधुनिक मनुष्य की नियति में बहुत साम्य है, दोनों को ही शत्रुता विरासत में मिली है। प्रतिपल युद्ध के साये में पल रहा मनुष्य अभिमन्यु की तरह ही हर आघात को सहने के लिए विवश है-

"कौन कब तक बन सकेगा कवच मेरा ?

युद्ध मेरा, मुझे लड़ना

इस महाजीवन समर में अंत तक कटिबद्ध :

मेरे लिए यह व्यूह घेरा,

मुझे हर आघात सहना,

गर्भ-निश्चित मैं नया अभिमन्यु, पैतृक-युद्ध !"[9]

अगर वर्तमान संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में भी हम उपर्युक्त पँक्तियों का मूल्यांकन करें तो पाएँगे कि दो देशों के बीच का युद्ध दो राष्ट्राध्यक्षों का फैसला होता है परन्तु इसकी विभीषिका से दोनों

देशों की सेनाएँ और आम-जन प्रभावित होते हैं। दो विश्वयुद्धों की परिणति को हमने देखा है। अभी हाल ही में तालिबान-अफगानिस्तान के युद्ध और रूस-युक्रेन के युद्ध में भी हमने देखा कि सामान्य जनता कैसे आघात को सहने के लिए अभिशप्त नज़र आयी।

यद्यपि कुँवर नारायण का पहला काव्य-संग्रह 'चक्रव्यूह' है परन्तु हिंदी जगत में उनकी प्रसिद्धि का प्रथम आधार 'आत्मजयी' (1964) है। 'आत्मजयी' का कथानक कठोपनिषद के नचिकेता प्रसंग को आधार बनाकर लिखा गया है परन्तु 'आत्मजयी मिथकीय आख्यान भर नहीं है। और न ही नचिकेता मिथकीय चरित्र मात्र। कठोपनिषद की पुराकथा को आधार बनाकर लिखे जाने के बावजूद 'आत्मजयी' हमारे समय का बयान है। यह संयोग नहीं है कि नचिकेता, कठोपनिषद का नचिकेता कम, आज का जिज्ञासु, चेतना संपन्न युवक ज़्यादा नज़र आता है। उसकी असहमति, उसके सवाल, उसका संघर्ष सब कुछ प्रतीकात्मक है और वर्तमान जीवन-संदर्भों से जुड़ा हुआ है। आत्मिक उन्नति को नज़रंदाज़ कर किये गये भौतिक विकास पर कवि प्रश्नचिह्न खड़ा करते हैं। नचिकेता उस विचारशील व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है जो जानता है कि वस्तुपरक जीवन-दृष्टि की अपेक्षा आत्मपरक जीवन-दृष्टि ज़्यादा महत्वपूर्ण है।'आत्मजयी' के विषय में हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक शंभुनाथ लिखते हैं- "'आत्मजयी' शरीर पर व्यक्ति की आत्मा की जीत का काव्य है जो अस्तित्व को अध्यात्म से जोड़ता है"[10]

इस खंडकाव्य में कवि की अनुभूतियों और दार्शनिक प्रश्नों का एकाकार रूप देखने को मिलता है। स्वयं को जानने की जिज्ञासा नचिकेता के व्यक्तित्व को बृहत्तर अर्थ देता है। "मैं क्या हूँ?" सिर्फ प्रश्न मात्र नहीं है, यह स्वयं का आत्म से संवाद है। व्यक्ति के आत्मिक विकास में इस संवाद की बहुत बड़ी भूमिका है। निश्चय ही इस प्रश्न का उद्गम जीवन की सार्थकता की तलाश में है। उसका उद्देश्य जीवन को वृहत्तर अर्थ देना है। यह प्रश्न शारीरिक सुखों की चाह में मानवीय जीवन को विलीन कर देने वाली मनोवृत्तियों का प्रतिकार है। 'आत्मजयी' कठोपनिषद के

नचिकेता प्रसंग पर आधारित है, बावजूद इसके इसमें जिन जीवन अनुभवों को कुँवर जी व्यक्त करते हैं उनका संबंध हमारे समकाल से है। 'आत्मजयी' के संदर्भ में विचार करते हुए हिंदी के प्रतिष्ठित आलोचक ओम निश्चल लिखते हैं-

"उपनिषदों की ओर लौटना केवल अपनी परंपरा की ओर लौटना नहीं है बल्कि इस बहाने नए जीवन-यथार्थ के ज्वलंत प्रश्नों से टकराना है, उन विचारों, प्रत्ययों, युक्तियों, और विश्वासों से आज भी संग्रहणीय किन्तु अलक्षित जीवन-मूल्यों का संधान करना है जिन्हें सामने रख कर मनुष्यतर होने की कृतज्ञता से परिपूर्ण हुआ जा सकता है।"[11]

'आत्मजयी' को पढ़ने के पश्चात किये गये चिंतन-मनन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नचिकेता और वाजश्रवा का संघर्ष केवल दो पीढ़ियों का संघर्ष न होकर, दो जीवन-दृष्टियों का संघर्ष है। आधुनिक जीवन-बोध से युक्त नचिकेता अपने पिता को भविष्य का अधिकारी मानने से इंकार करता है क्योंकि वाजश्रवा न तो अपने हित से आगे सोच पाने में सामर्थ्यवान है, न ही अपने सुख के आगे अपने हित की सोच पाता है। वाजश्रवा और नचिकेता में एक पीढ़ी का अंतराल है, साथ ही दोनों के जीवन-विवेक में भी पर्याप्त अंतर है। नचिकेता का जीवन-विवेक इस बात की इजाज़त नहीं देता कि स्वार्थ, क्रूरता, हिंसा, बेईमानी को जीवनशैली के रूप में स्वीकार कर लिया जाये। नचिकेता में एक व्याकुलता है, जीवन की सार्थकता को ढूँढने की व्याकुलता। मनुष्य की बुद्धि का महत्त्व नचिकेता जानता है इसलिए किसी भी वरदान से बढ़कर मानव-विवेक को महत्त्व देता है। स्वर्ग के लालच में विवेक की बलि देना नचिकेता को स्वीकार नहीं है-

"मनुष्य स्वर्ग के लालच में

अक्सर उस विवेक तक की बलि दे देता

जिस पर निर्भर करता

जीवन का वरदान लगना।[12]

नचिकेता आधुनिक जीवन के उन भौतिकवादी मानदंडों को नकारता है जो मनुष्य के शरीर तक सीमित हैं। 'आत्मजयी' के नचिकेता के विषय में शंभुनाथ लिखते हैं- "नचिकेता में एक विशिष्ट चीज है- भौतिक सुखों को ही सब कुछ न मानने का साहस।"[13] इस साहस से ही अनुप्राणित होकर वह ज़िन्दगी से भी आगे बढ़कर अमर जीवन-मूल्यों को खोज लेना चाहता है। ऐंद्रिय सुख और तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति में वह जीवन को नहीं खपाना चाहता अपितु जीवन को महान उद्देश्यों के प्रति समर्पित करना चाहता है। नचिकेता के ठीक विपरीत जब हम वाजश्रवा पर नज़र डालते हैं तो पाते हैं कि वाजश्रवा का जीवन के प्रति भौतिक दृष्टिकोण है। सुख की कामना वाजश्रवा के जीवन का उद्देश्य है उसके सभी क्रिया-व्यापार इसी कामना से प्रेरित हैं। वाजश्रवा द्वारा किये जाने वाले यज्ञों का भी प्रधान उद्देश्य वरदान प्राप्त करना ही था। इस वरदान के मूल में भी सुख की कामना ही रही है। वहीं नचिकेता के विषय में कवि ने भूमिका में ही लिख दिया है- "उसके अंदर वह बृहत्तर जिज्ञासा है जिसके लिए केवल सुखी जीना काफ़ी नहीं, सार्थक जीना ज़रूरी है।"[14] नचिकेता के अंदर की बृहत्तर जिज्ञासा उसे दैहिक-दैनिक स्तर पर जीवन जीने नहीं देती। उसे अक्षय जीवन की चाह है, एक ऐसा जीवन जो भौतिक सुखों तक सीमित न हो। नचिकेता के लिए यह जग पर्याप्त नहीं है इसलिए वह लगातार जीवन की संभावनाओं को तलाशने में लगा है। मृत्यु के समीप जाकर जीवन को पा सकने का साहस नचिकेता में है। वह मृत्यु के करीब होकर भी बौद्धिकता का दामन नहीं छोड़ता है। कुँवर नारायण जिस बौद्धिक चेतना के लिए जाने जाते हैं, आत्मजयी का नचिकेता उसका प्रतिनिधि हस्ताक्षर है। नचिकेता की इन्हीं विशेषताओं को लक्ष्य करके शंभुनाथ ने लिखा है- "'आत्मजयी' में एक उच्च अर्थपूर्ण जीवन की ललक वर्तमान से असंतोष की देन है जो दिखावा से भरे भौतिक जीवन

से भिन्न, एक अलग तरह के जीवन संसार की ओर नचिकेता को ले जाती है। नचिकेता परंपरा की रूढ़ पवित्रताओं को ठुकराता है। वह एक खास युग के 'पीढ़ियों के संघर्ष' को भी व्यक्त करता है।"[15]

जब हम वर्तमान समय में मनुष्य की जीवन-शैली के परिप्रेक्ष्य में आत्मजयी में निहित मिथकीय चेतना का मूल्यांकन करते हैं तो पाते है कि इस संग्रह में हमारा समय और हम दर्ज हैं। कठोपनिषद को आधार बनाकर रचे गये कथानक के बावजूद 'आत्मजयी' का काव्य-परिवेश समसामयिक है। हर्फ़-दर-हर्फ़ इस खंडकाव्य की पंक्तियाँ हमारे समकाल को मिथक के आवरण में रचती हैं। बाज़ारवाद के इस दौर में मानव-जीवन की प्रगति को भौतिक सुखों से ही मापा जाने लगा है। हमने दिखावे से भरे व्यवहार को अपनेआचरण का हिस्सा बना लिया है। सुख का मतलब भौतिक सुख तक सिमट गया है। मानवीय गरिमा के लिए इससे ज़्यादा त्रासदीपूर्ण और क्या ही होगा कि भौतिक प्रगति की होड़ में हमने आत्मिक प्रगति पर ध्यान देना बंद कर दिया है। 'आत्मजयी' भौतिक इच्छाओं के इर्द-गिर्द घूमने वाली जीवनशैली पर प्रश्न-चिह्न उठाता है। 'आत्मजयी' उस उपक्रम के खिलाफ़ प्रतिरोध है जो हमें वरदान का लालच देकर हिंसक बनाता है-

"नहीं चाहिए तुम्हारा यह आश्वासन

जो केवल हिंसा से अपने को सिद्ध कर सकता है।

नहीं चाहिए वह विश्वास, जिसकी चरम परिणति हत्या हो।"[16]

नचिकेता जीवन के उस ढर्रे को तोड़ना चाहता है जो रूढ़ हो चुका है। वह उस जीवन-शैली को बदलना चाहता है जिसमें अपने सुख के आगे कुछ भी सोचा न जा सके। नचिकेता का अपने पिता से यह कहना कि इस जीवन-पद्धति से असहमत होने वाले को अपनी सत्ता से

आक्रांत मत करो, यह दर्शाता है कि वह लोकतान्त्रिक व्यवहार का पक्षधर है। नचिकेता जानता है कि असहमति का साहस मनुष्य की अमूल्य थाती है, इसलिए वह इसे ताजी हवा में पनपने देने की वकालत करता है। नचिकेता का चरित्र हमें आधुनिक चिंतन का प्रतीक मालूम होता है। चूँकि कुँवर नारायण ने कठोपनिषद की इस कथा को धार्मिक कथा के रूप में ग्रहण नहीं किया इसलिए वे इसका आधुनिक संदर्भों में प्रयोग कर पाये। 'आत्मजयी' मूलतः चिंतन मूलक काव्य है यहाँ घटनाएँ और कथा-क्रम उतने मायने नहीं रखते जितनी वे प्रश्न मायने रखते हैं, जिसे काव्य ने जन्म दिया। 'आत्मजयी' के विषय में ओम निश्चल लिखते हैं – "आत्मजयी उस हठी बच्चे की कहानी है जो कैशोर्य में ही परिपक्व हो चला है। वह जानता है एक समाप्ति सारे अस्तित्व की इति नहीं। यानी वह समाप्त भी हो गया तो इससे उसकी जिज्ञासाओं की इतिश्री नहीं होने वाली। ऐसी संज्ञाएँ बार बार जन्म लेती रहेंगी।"[17]

यह हठी बच्चा (नचिकेता) अपने पिता के भोग-विलासपूर्ण जीवन को अस्वीकार करने का साहस रखता है। नचिकेता के चरित्र में एक विशेष प्रकार की वैचारिक अकुलाहट को हम महसूस कर सकते हैं। नचिकेता एक आधुनिक मनुष्य का प्रतिनिधि हस्ताक्षर है और आधुनिक मनुष्य सिर्फ़ आस्था से काम नहीं चला सकता, जो बात तर्क से परे है उसपर वह सवाल उठाता है। और, अपने सवालों से रूढ़ मान्यताओं को चुनौती देते ही वह विद्रोही कहला जाता है। वह नये जीवन-बोध से युक्त चरित्र है इसलिए वह संतुष्ट नहीं हो पाता है। पिता के "ऐसे जवाबों से जिनका सम्बन्ध/ आज से नहीं अतीत से है/ तर्क से नहीं रीति से है।"[18] 'सरवाइवल ऑफ़ द फिटेस्ट' वाले जिस प्रतिस्पर्द्धात्मक समय में हम जी रहे हैं, 'आत्मजयी' उस समय के प्रतिपक्ष को रचने की कोशिश है। जिनके इरादों में हिंसा हो, जिनकी समृद्धि और कल्याण का रास्ता निरीह पशुओं की आहुतियों में हो उसे चुनौती देना हर युग के नचिकेता का धर्म है।

मिथक पर आधारित कुँवर नारायण का एक और महत्वपूर्ण खण्डकाव्य है-'वाजश्रवा के बहाने'। इस काव्यग्रंथ की भूमिका में कुँवर नारायण लिखते हैं- "'आत्मजयी' में यदि मृत्यु की ओर से जीवन को देखा गया है, तो 'वाजश्रवा के बहाने' में जीवन की ओर से मृत्यु को देखने की एक कोशिश है।"[19] यह काव्यग्रंथ दो खंडों में विभाजित है। पहले खंड का शीर्षक है-'नचिकेता की वापसी', दूसरे खंड का शीर्षक है-'वाजश्रवा के बहाने'। इस काव्यकृति के शीर्षक से ही मालूम होता है की वाजश्रवा तो एक बहाना है। कवि वाजश्रवा के बहाने समकालीन जीवन परिप्रेक्ष्य को नवीन दृष्टि से देखने का यत्न करते हैं।'आत्मजयी' में वाजश्रवा के जिस रूप को चित्रित किया गया है, 'वाजश्रवा के बहाने' का वाजश्रवा उससे भिन्न है। पुत्र को खो देने के पश्चात जिस पीड़ा को वाजश्रवा ने महसूस किया, उस पीड़ा ने वाजश्रवा की जीवन-दृष्टि को बदल डाला। वाजश्रवा के मन में उस क्रोध के लिए पश्चाताप है जिसने उसे उसके पुत्र से अलग कर दिया-

"तुम्हें खोकर मैंने जाना

हमें क्या चाहिए-कितना चाहिए

क्यों चाहिए सम्पूर्ण पृथ्वी ?

जबकि उसका एक कोना बहुत है

देह-बराबर जीवन जीने के लिए

और पूरा आकाश ख़ाली पड़ा है

एक छोटे-से अहं से भरने के लिए?"[20]

आज के समय में जब पूरी पृथ्वी को जीत लेने की होड़ मची हुई है, ऐसे नाज़ुक वक्त में वाजश्रवा का यह पश्चाताप विशेष महत्त्व रखता है। इस पश्चाताप में जीवन को नये सिरे से शुरू करने की कोशिश का भाव है, एक ऐसी शुरुआत जिसमें पूर्व की भूल-चूक को सुधारा जा सके और बेहतर जीवन का निर्माण किया जा सके। सच पूछिए तो ज़िन्दगी हमें बीते कल से बेहतर होने के लिए खूब अवसर देती है। परन्तु अधिकांश अवसरों में हम पूर्व की भूल-चूक से आगे नहीं बढ़ पाते हैं। कवि सच्चे पश्चाताप का महत्त्व जानते हैं-

"एक सच्चा पश्चाताप- एक प्रायश्चित

एक हार्दिक क्षमायाचना से भी

परिशुद्ध की जा सकती है

भूलचूक की पिछली ज़मीन"[21]

पछतावा या पुनरागमन जैसे शब्दों को कुँवर नारायण एक अवसर के रूप में देखते हैं। हमने अपने 'अहं' को इतना बड़ा कर लिया है कि अपनी गलती होने पर भी 'क्षमायाचना' करने का साहस हम खोते जा रहे हैं। ऐसे समय में कवि पश्चाताप के महत्त्व को कविता में प्रतिष्ठित करता है। ध्यातव्य है कि आज़ादी के बाद हमारे देश की परिस्थितियाँ जिस तरह से बदलीं उसने आदमी को अपनी जड़ों से काट कर अलग-थलग कर दिया। व्यक्ति के अकेलेपन से उपजी मनोदशा ने दो पीढ़ियों के बीच के अंतराल को और बढ़ा दिया। कुँवर नारायण दार्शनिक प्रतीतियों के सहारे दो पीढ़ियों के इस अंतराल को कम करना चाहते हैं। कुँवर जी 'वाजश्रवा के बहाने' की भूमिका में लिखते हैं "पुत्र की 'वापसी' एक अमूल्य अवसर है कि वाजश्रवा अपनी भूलचूकों को सुधार ले। इस अवसर, तथा जीवन में आते रहनेवाले इस तरह के अवसरों को, इस

लम्बी कविता में विशेष महत्त्व दिया गया है। पछतावा, पुनरागमन जैसे शब्दों में यही भाव व्यंजित है।"[22]

रिश्तों की आत्मीयता का अहसास कई बार उस रिश्ते की अनुपस्थिति में होता है। वह नचिकेता जिसे हमने 'आत्मजयी' में अपने पिता की मान्यताओं को चुनौती देते हुए पाया। उसके व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पक्ष वह भी है जब वह यम से साक्षात्कार के पश्चात पिता के पास लौटता है और अपने पिता से गले लगने पर इस बात के लिए आश्वस्त होता है कि उसकी दुनिया अभी ख़त्म नहीं हुई है। पिता का होना उसे अपने संसार के जीवित होने का बोध कराता है। वाजश्रवा भी इस अमूल्य पल की कीमत जानता है। परन्तु वाजश्रवा का जीवन-अनुभव नचिकेता के जीवन-अनुभव से अधिक है। जाहिर है यह उम्र के फ़र्क की वजह से है। इसलिए वाजश्रवा मिलन के इस भावुक पल में भी इस हक़ीकत से अनजान नहीं है कि नचिकेता अपने पिता के जीवन में तो लौट आया है पर शायद उसके समय में न लौट पाये-

"अच्छा हुआ तुम लौट आये

मेरे जीवन में,

लेकिन जानता हूँ

नहीं आ सकोगे

-चाह कर भी नहीं-

वापस मेरे युग में!"[23]

किसी युग में वापस लौटना उन वैचारिक सरणियों पर वापस लौटना भी है जिसका वह युग प्रतिनिधित्व करता है। वाजश्रवा जानता है कि दो पीढ़ियों के बीच की वैचारिक दूरी को

नचिकेता नहीं लाँघ पायेगा। बावजूद इसके, इस मिलन का महत्त्व है। यह मिलन दो पीढ़ियों के संवाद का रास्ता है। ग़ौरतलब है कि मानवीय भविष्य की संभावनाओं का रास्ता भी इसी संवाद से होकर गुज़रता है। पिता-पुत्र के संवाद के बहाने कुँवर नारायण दो पीढ़ियों के अंतर्द्वंद्वों को नयी दृष्टि से देखने की कोशिश करते हैं। इस संदर्भ में सुस्मित सौरभ का मत दृष्टव्य है-

"मिथकीय कृति 'वाजश्रवा के बहाने' कुँवर नारायण जी की विलक्षण रचना है। इसमें नचिकेता की वापसी के बहाने, परिस्थितिजन्य विषमताओं और आंतरिक द्वंद्वों को नई संवेदनाओं के माध्यम से देखने की कोशिश की गई है। कुँवर नारायण ने एक सनातन कथा को अपने युग के अर्थों से भरा है।"[24]

'आत्मजयी' का वाजश्रवा और 'वाजश्रवा के बहाने' का वाजश्रवा दो भिन्न व्यक्तित्व नज़र आते हैं। दरअसल वह एक ही व्यक्ति की दो मनोदशा है। हम देख सकते हैं कि मनोदशा के बदलते ही किस प्रकार व्यक्ति का कायापलट हो जाता है। वह वाजश्रवा जो भौतिक सुख को अपना सर्वस्व समझने लगा था, उसने कालान्तर में 'अस्ति-बोध' और वस्तुबोध के अंतर को जाना। हममें से कितने ही वाजश्रवा आज तक इस अंतर को नहीं जान सके हैं। अगर वस्तु, व्यक्ति का स्थान ले ले तो निश्चय ही यह शुभ संकेत नहीं है। कुँवर नारायण जब इस 'अस्तिबोध' और 'वस्तुबोध के फ़र्क को अपनी कविता में रखते हैं तो वे कवि होने के नैतिक दायित्व का भी निर्वहन कर रहे होते हैं।

"मेरी सबसे प्रिय वस्तु!- भूल हुई

'वस्तु' माना अपने सबसे 'प्रिय' को,

अपना अभिन्न नहीं।

उस नाज़ुक पल में जाना कि अन्तर है

बहुत बड़ा अन्तर है

अस्तिबोध में और वस्तुबोध में।"[25]

'वाजश्रवा के बहाने' मिथकीय आवरण में लिपटा एक ऐसा गीत है जिसमें हमारे समय की रागिनी बजती है। चाहे दो पीढ़ियों का अंतर्द्वंद्व हो या 'वस्तु-बोध' और 'अस्ति-बोध' का अंतर जिस रूप में कवि ने उसे अभिव्यक्त किया है वह उपनिषदकालीन होकर भी हमारा समकाल रचता है।

मिथकीय चरित्र को कुँवर जी ने कई अन्य मुक्तक-कविताओं का भी वर्ण्य-विषय बनाया है। उन्होंने स्वयं कई जगहों पर इस बात को स्वीकारा है कि विस्तृत-कालखंड और जीवन-अनुभव को स्पर्श करने के लिए वे मिथक को अपनी कविताओं का आधार बनाते हैं- "मैं समय-बोध को विस्तृत करने के लिए मिथक का प्रयोग करता हूँ। हमारा समकालीन बोध सीमित होता है। तब हम इतिहास या मिथक में जाते हैं, जहाँ आज के अनुभवों और तब के अनुभव गहरे कहीं जुड़ते हैं। इस युक्ति से कविता में समय के ज़्यादा विस्तृत काल-खंड का स्पर्श कर सकें। फिर कविता के तमाम निहित संदर्भों को स्पष्ट करने में आसानी होती है।"[26]

सिर्फ़ प्रबंध-काव्य ही नहीं कुँवर नारायण की कई मुक्तक कविताओं का आधार भी मिथक है। वे भारतीय और पाश्चात्य मिथकों का सुंदर प्रयोग अपनी कविताओं में करते हैं। जब कुँवर जी अपनी कविता की भाव-भूमि के लिए मिथकों का चुनाव करते हैं तो यह नहीं देखते हैं कि यह मिथक हिंदू धर्म से संबंधित है या बौद्ध धर्म से, यह भारत से संबंधित है या यूनान से। धर्म, काल, देश की सीमाओं से परे जाकर वे मिथकों का चुनाव करते हैं। कुँवर जी की एक कविता का शीर्षक है- 'ट्यूनीशिया का कुआँ'। यह कविता 'हाशिए का गवाह' नामक काव्य-

संग्रह में संग्रहित है। कविता में प्रयुक्त मिथक भारतीय नहीं है परन्तु उसके मायने हर देश और हर काल में प्रासंगिक हैं। कुँवर जी लिखते हैं-

"ट्यूनीशिया में एक कुआँ है

कहते हैं उसका पानी

धरती के अंदर ही अंदर

उस पवित्र कुएँ से जुड़ा है

जो मक्का में है।

मैंने तो यह भी सुना है

कि धरती के अंदर ही अंदर

हर कुएँ का पानी

हर कुएँ से जुड़ा है।"[27]

उपर्युक्त कविता में हम देखते हैं कि कुँवर नारायण किस प्रकार मिथक से अपनी स्थापना को जोड़ते हैं ताकि विश्वबंधुत्व की भावना को बल मिले। भारत जैसे देश में सदियों तक जातिप्रथा को सामाजिक स्वीकृति मिलती रही है। आज भी देश के कुछ हिस्सों में ऊँच-नीच की भावना और किसी एक जाति विशेष को अछूत मानने की भावना विद्यमान है। ऐसे देश में जब कवि मिथक के सहारे यह स्थापना देता है कि "हर कुएँ का पानी/ हर कुएँ से जुड़ा है" तो उसका यह बयान सामाजिक विसंगतियों का प्रतिपक्ष गढ़ने का काम करता है। यह कवि के सामाजिक सरोकारों को भी दर्शाता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कुँवर नारायण ने मिथक का प्रयोग कर समकालीन जीवन से जुड़े सवालों को स्वर दिया है। उपनिषदों में जीवन और मृत्यु संबंधी जो चिंतन है उसे आज के परिवेश में ढालकर कुँवर जी ने पौराणिक कथा को समसामयिक बना दिया है। मिथकीय कथा का आधार लेकर कुँवर जी की कविताएँ हमारे आज के कालबोध को विस्तार दे देती हैं। मिथकों के सहारे मनुष्य की आत्मिक ज़िन्दगी पर विचार करने वाले कवि के रूप में कुँवर नारायण की प्रासंगिकता और प्रमाणिकता स्वयंसिद्ध है। भारतीय परंपरा से मिथकों के संबंध के विषय में कुँवर नारायण का मत दृष्टव्य है-"यह काफी रोचक है कि तमाम प्रबोधनों के बावजूद भारतीय परंपरा ने मिथकशास्त्र को एक मृत (प्राय) वस्तु समझते हुए कभी भी खारिज नहीं किया, बल्कि मानवीय ऊर्जा के एक प्रच्छन्न स्रोत और मानसिक बुनावट के एक जीवंत हिस्से के रूप में उसे बरतती रही।"[28]

संदर्भ सूची:

1. (सं) मुकुन्द द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथमाला, खंड-7, पृष्ठ-85
2. शंभुनाथ, हिन्दू मिथक आधुनिक मन, पृष्ठ-80
3. शंभुनाथ, हिन्दू मिथक आधुनिक मन, पृष्ठ-105
4. डॉ. बच्चन सिंह, आधुनिक साहित्यआलोचना की चुनौती, पृष्ठ-35
5. मालती सिंह, मिथक : एक अनुशीलन, पृष्ठ-68
6. सुस्मित सौरभ, मिथक और कुँवर नारायण, पृष्ठ-92
7. शंभुनाथ, हिंदू मिथक आधुनिक मन, पृष्ठ-228
8. (सं) विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-29-30
9. कुँवर नारायण, चक्रव्यूह, पृष्ठ-111
10. ओम निश्चल, अन्विति, पृष्ठ-54
11. सुस्मित सौरभ, कविता की सगुण इकाई, पृष्ठ-69
12. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-27
13. शंभुनाथ, हिन्दू मिथक आधुनिक मन, पृष्ठ-233
14. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-5
15. शंभुनाथ, हिन्दू मिथक : आधुनिक मन, पृष्ठ-234
16. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-24
17. (सं) ओम निश्चल, कविता की सगुन इकाई: कुँवर नारायण, पृष्ठ-64
18. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-26
19. कुँवर नारायण, वाजश्रवा के बहाने, पृष्ठ-7
20. वाजश्रवा के बहाने, पृष्ठ-112
21. वही, पृष्ठ-91

22.वही, पृष्ठ-8

23.वही, पृष्ठ-96

24.सुस्मित सौरभ, मिथक और कुँवर नारायण, पृष्ठ-145

25.कुँवर नारायण, वाजश्रवा के बहाने, पृष्ठ-109

26.विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-123

27.कुँवर नारायण, हाशिए का गवाह, पृष्ठ-32

28.(सं) विनोद तिवारी, पक्षधर, जनवरी-जून 2015, पृष्ठ- 26

3.4 कुँवर नारायण की नज़रों में कविता

एक कवि के लिए कविता और कविकर्म क्या मायने रखते हैं, यह बहुत कुछ उसकी जीवन-दृष्टि और काव्य-दृष्टि पर निर्भर करता है। कुँवर नारायण की दृष्टि में कविता का क्या महत्त्व है? जीवन से उसकी संबद्धता क्या है? किसी कविता की सार्थकता किन बातों पर निर्भर करती है? जैसे सवालों से गुजरने की कोशिश इस उपअध्याय में की गई है। ध्यातव्य है कि कुँवर नारायण ने कई कविताएँ ऐसी लिखी हैं जिसकी विषय-वस्तु स्वयं कविता है। उनके साक्षात्कारों, कलात्मक टिप्पणियों, डायरी लेखन आदि के द्वारा भी कविता के विषय में उनके विचारों को जाना जा सकता है। कुँवर नारायण की कविताओं से यह मालूम होता है कि कवि, एक साथ बौद्धिक और संवेदनशील, आधुनिक और पारंपरिक तथा अपनी स्मृति से प्यार करते हुए भी भविष्य और संभावनाओं का सर्जक हो सकता है। जीवन और कविता के संबंधों के विषय में कुँवर नारायण कहते हैं कि "कविता जीवन से बेहद प्यार की भाषा है। इस बेहदी और इस प्यार का आदर करता हूँ। जहाँ इनमें कमी देखता हूँ, कविता इनके अभाव से उत्पन्न उदासी की भाषा बन जाती है।"[1]

प्यार को प्रश्रय देना कुँवर नारायण के लिए केवल भावुकता की बात न होकर बुद्धिमत्ता की बात भी है क्योंकि कुँवर जी इस बात को जानते थे कि प्रेम की ज़रूरत जीवन को भी है और कविता को भी। उन्होंने कभी भी कविता को जीवन से अलग करके नहीं देखा। जीवन की चुनौतियों और संभावनाओं के उत्खनन को उनकी कविता में महसूसा जा सकता है। जीवन से जुड़ने की वजह से कुँवर नारायण की कविता जीवन-विवेक से स्वतः जुड़ जाती है। विवेक का कविता से जुड़ाव को महत्त्वपूर्ण मानने वाले कुँवर नारायण कभी भी कोरी बौद्धिकता के पीछे नहीं भागते हैं बल्कि संवेदनाओं के विस्तार को बराबर महत्त्व देते हैं। एक प्रश्न के जवाब में कुँवर जी कहते हैं- "मेरी कविताओं की एक विनम्र कोशिश रही है कि हमारी संवेदनाओं की परिधि

संकुचित न होने पाए।"[2] कितना सुखद है यह देखना कि एक कवि जो अपनी कविताओं का उद्देश्य संवेदनाओं की परिधि का विस्तार मानता है, वह वैचारिकता को भी बराबर महत्त्व देता है। कुँवर नारायण की कविताओं में बौद्धिकता और वैचारिकता के समन्वय को महसूसा जा सकता है। अनुभव और दर्शन का दुर्लभ संयोग हम कुँवर जी की कविता में पाते हैं। कविकर्म उनके लिए एक ख़ास किस्म का दायित्वबोध है। संभवतः इसलिए वे अपनी कविता और उसमें प्रयुक्त शब्दों के प्रति काफी सजग थे। कई ऐसे विद्वान जिन्हें कुँवर नारायण का संगत प्राप्त हुआ है; ने इस बात का ज़िक्र किया है कि वे अपनी कविता को कई बार संशोधित करते थे। वे अपनी कविताओं के चयन के वक्त बहुत ही निर्मम नज़र आते हैं। उन्हें अपनी जिस भी कविता में थोड़ी-सी भी कमी नज़र आती थी उसे वो प्रकाशन के लिए नहीं भेजते थे। यही कारण है कि उनकी कई कविताएँ आज भी डायरी में लिखी हुई तो हैं, पर प्रकाशित नहीं हैं।

'तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं' में यतीन्द्र मिश्र के साथ की गई वह वार्तालाप संगृहीत है जिसमें कुँवर नारायण कविता के विषय में कहते हैं-"कविता साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा सबसे अधिक संस्कृत-सापेक्ष विधा है। कविता का अनुवाद इसी वजह से सबसे मुश्किल होता है; उसके सतही अर्थ का अनुवाद तो हो पाता है, पर उस 'संस्कृति' का अनुवाद नहीं हो पाता जो एक कविता को किसी भाषा में ख़ास तरह-यानी उसी तरह सुंदर बनाता है।"[3]जाहिर सी बात है कि कविता कुँवर जी के लिए केवल शब्दों का पद्यात्मक संयोजन नहीं है। वह उस इतिहास और संस्कृति से गहरे अर्थों में जुड़ी होती है जिसमें वह लिखी जाती है। अब यहाँ कुँवर नारायण की कविता संबंधी दृष्टिकोण से जुड़ी एक दिलचस्प बात है, जिसका ज़िक्र मैं जरूरी मानता हूँ। एक तरफ़ वे कविता को संस्कृति सापेक्ष विधा मानते हैं तथा यह विश्वास दिलाते हैं कि कविता में प्रयुक्त 'शब्द' के व्यक्तित्व द्वारा "उन अनुभव-यात्राओं के बारे में जाना जा सकता है जिनसे गुज़र कर वे वर्तमान अर्थ संदर्भ तक पहुंचे हैं।"[4] दूसरी ओर हम उनकी कविताओं को पढ़ते हुए यह पाते हैं कि उनके पात्र चाहे किसी भी कालखंड के हों, कथानक चाहे इतिहास के

किसी भी युग का हो परन्तु उन ऐतिहासिक घटनाओं का ज़िक्र अपनी कविता में वे इस रूप में करते हैं जिससे आज की समस्या को स्वर दिया जा सके। कुँवर नारायण की एक कविता का शीर्षक ही 'कविता' है। इसमें कवि ने कविता की महत्ता और मनुष्य के साथ उसकी संबद्धता को लक्षित करते हुए लिखा है-

"कोई चाहे भी तो रोक नहीं सकता

भाषा में उसका बयान

जिसका पूरा मतलब है सचाई

जिसकी पूरी कोशिश है बेहतर इन्सान"[5]

कोई इंसान बेहतर कैसे बनता है? वो कौन से गुण हैं जो इंसान को बेहतर बनाते हैं? या वो कौन से अवगुण हैं जिससे दूर होकर आदमी बेहतर इंसान बन सकता है? इन सवालों के जवाब कुँवर नारायण की कविताओं में बिखरे पड़े हैं। 'मनुष्यतर' होने की चाह कुँवर नारायण की कविता में आदि से अंत तक मौज़ूद है। कुँवर नारायण व्यक्ति को समाज की एक सम्मानित इकाई के रूप में स्वीकारते हैं तथा मनुष्य के जीवन-विवेक को उसकी अमूल्य पूँजी मानते हैं। उनकी कविता की जीवन से संबद्धता इस बात का प्रमाण है कि वे मानव जीवन में आस्थावान कवि हैं। ओम निश्चल के साथ अपनी बातचीत में कुँवर नारायण इस बात को स्वीकारते हैं कि "मैंने कविता को हमेशा 'जीवन' और 'जीवन-विवेक' से जोड़ने की कोशिश की है।"[6]

यह वही जीवन-विवेक है जो 'आत्मजयी' के नचिकेता को तमाम भौतिक सुखों का त्याग करने और रूढ़ मान्यताओं से सवाल करने का साहस देता है, यह वही जीवन-विवेक है जिसकी वजह से कुमारजीव को राजदरबार से ज़्यादा विद्वत् समाज की संगत लुभाती है। यह वही जीवन-विवेक है जिसकी तलाश में कुँवर नारायण उपनिषदों, पुराणों, मिथकों से लेकर इतिहास

तक की यात्रा करते हैं। कुँवर नारायण की नज़रों में कविता मनुष्य के चेतना की गवाही है- "कविता वक्तव्य नहीं गवाह है/ कभी हमारे सामने/ कभी हमसे पहले/ कभी हमारे बाद"[7]निश्चित तौर पर कुँवर नारायण कविता को किसी एक कालखंड या किसी एक सीमा में बाँधने के पक्षधर नहीं रहे हैं। ख़ुद उन्होंने अन्य भाषाओं के कवियों को खूब पढ़ा है और उनकी कविताओं का अन्य भाषा में अनुवाद भी खूब हुआ है। जहाँ कहीं भी उदत्तता है, जीवन-विवेक है, कवि उधर आकृष्ट होते हैं।

वर्तमान में बाज़ार जिस तरह से हमारे जीवन में शामिल हो गया है वह मनुष्यता के लिए शुभ संकेत नहीं है। बाज़ार ने हमारे चयन-बोध और समझदारी तक को अपनी गिरफ़्त में ले लिया है। बाज़ार ने हमें ज़रूरी और ग़ैर ज़रूरी के बीच फ़र्क करना भुला दिया है। कुँवर नारायण की कविताओं को पढ़ते हुए ज़िन्दगी को देखने का जो नज़रिया प्राप्त होता है वह बाज़ार की मानसिकता के ठीक विपरीत है- "कुछ इस तरह भी पढ़ी जा सकती है/ एक जीवन-दृष्टि-/ कि उसमें विनम्र अभिलाषाएँ हों/ बर्बर महत्वकांक्षाएँ नहीं"[8]उपभोक्तावादी जीवन-शैली ने आत्मिक जीवन को बहुत क्षति पहुँचायी है।ग़ौरतलब है कि बाज़ार बर्बर महत्वकांक्षाओं को जन्म देता है और साहित्य एवं कलाएँ उसका प्रतिपक्ष सुझाती हैं। जीवन के लिए जो दिखता है उससे ज़्यादा ज़रूरी वह है जो अदृश्य है। करुणा, सत्य, ईमानदारी जैसे भाव अदृश्य होकर भी हमारे लिए ज़रूरी हैं ठीक उसी तरह से जैसे ताजी हवा। इसके बगैर जीवन तो है, पर वह कितना सार्थक है यह कह पाना संभव नहीं है। कुँवर नारायण की कविताओं में सार्थक जीवन के उपक्रमों को आसानी से तलाशा जा सकता है। स्वयं कवि के शब्दों में "जीवन और कविता दोनों में मेरी तलाश सार्थकता की रही है।"[9] सार्थकता एक बहुत ही व्यापक शब्द है और उदात्त जीवन-शैली के बगैर जीवन को सार्थक नहीं बनाया जा सकता। युद्ध, घृणा और हिंसा में संलिप्त होकर तो बिल्कुल भी नहीं कविता की भाषा, प्रेम की भाषा है और वर्तमान परिवेश में जब दुनिया युद्ध की आग में जलने को आतुर है, जब हमने दो महायुद्धों की त्रासदी को देखकर भी कुछ नहीं सीखा है

तो ऐसे वक्त में प्रेम को हमारी ऐसी ज़रूरतों में शामिल हो जाना चाहिए जिसके बगैर हम रह ही न पाएँ। एक साक्षात्कार में प्रेम से अपनी घनिष्ठता को कुँवर नारायण ने कवि होने का कारण बताया है- "उस ढाई आखर की याद दिलाते रहने के लिए फिर-फिर कवि होना चाहूँगा।...यह सिर्फ़ भावुकता की नहीं, एक बहुत बड़ी बुद्धिमत्ता की बात भी है।"[10]

कुँवर नारायण की नज़रों में कविता प्रेम के प्रसार का बेहतरीन माध्यम है। यह वह प्रेम है जिसके मूल में करुणा है। वही करुणा जो मानव होने की पहली और अनिवार्य शर्त है, वही करुणा जिसने वाल्मीकि को रामायण का प्रणेता और सिद्धार्थ को गौतम बुद्ध बना दिया। इस युद्धोन्मत दुनिया के जख्मों में किसी मरहम की तरह है कुँवर नारायण की कविता। युद्धों में मनुष्य का गहराता विश्वास कवि को विचलित करता है। ध्यातव्य है कि मनुष्य की सुख-समृद्धि कई बार युद्ध की भेंट चढ़ी है। बावजूद इसके आज भी यह दुनिया लड़कर शांति पाना चाहती है। यह विडंबना ही कही जाएगी कि दो विश्वयुद्धों में बमों की त्रासदी को देखने के बावजूद आज भी दुनिया के प्रायः सभी देश खतरनाक हथियारों के निर्माण में गर्व महसूस कर रहे हैं। कई बार चोरी छुपके परमाणु बमों का परीक्षण किया जाता है जबकि यह तय है कि अगर इन बमों का फिर से कभी इस्तेमाल किया गया तो मानवता फिर से शर्मसार होगी। कुँवर नारायण को मानव-विवेक का यह पतन आश्चर्यचकित करता है। जो कुमारजीव की चिंता थी वह कई मायनों में कुँवर नारायण की ही अभिव्यक्ति है-

"यह सारी हिंसा, लूटपाट, रक्तपात,

उसे पाने के लिए जो नष्टधर्मा है

उस सत्य को पाने के लिए नहीं

जो अमर है।"[11]

कुँवर नारायण कविता में इस हिंसात्मक दुनिया का प्रतिपक्ष रचने की शक्ति पाते हैं। आज के समय में जब साहित्य और कलाओं के लिए जगह सिमटता जा रहा है, जब विज्ञान और तकनीक को हम इस तरह से अपने जीवन में शामिल कर रहे हैं जैसे विज्ञान और संवेदना में कोई शत्रुता हो उस वक्त कविता जैसी विधा मनुष्य के लिए और भी ज़रूरी हो जाती है। अब सवाल उठता है कि क्या हमारा समय कविता को आत्मसात करने के लिए तैयार है? यू ट्यूब और ओ.टी.टी प्लेटफार्म के इस युग में जब मनोरंजन के नाम पर फूहड़ दृश्यों का खजाना रोज ही दर्शकों के सामने उड़ेला जा रहा है। बाज़ार इतने रोचक ढंग से मनुष्य की चेतना को संचालित करने लग गया है कि इस मनोरंजन की भूख को रोज बढ़ाया जा सके और यह अतृप्त भूख कभी ख़त्म होने का नाम नहीं ले रही। आज हमारे इर्द-गिर्द वस्तुओं की कमी नहीं है। परन्तु क्या मनुष्य, मनुष्य के नज़दीक है? अगर नहीं तो उसकी क्या वजह है? क्या वस्तुओं ने मनुष्य को रिप्लेस कर दिया है? अगर ऐसा है तो मानवीय अस्तित्व की गरिमा के लिए इससे दुखद बात नहीं हो सकती। कुँवर नारायण इस स्थिति को भांप चुके हैं। महावीर अग्रवाल से बातचीत के क्रम में वे कहते हैं- "हमें कविता को बचाने की चिन्ता भी उसी तरह करनी चाहिए जैसे विज्ञान और तकनीक की अन्धी दौड़ में हम पृथ्वी और वनस्पति को बचाने की चिन्ता कर रहे हैं। कविता भाषायी पर्यावरण का सबसे नाजुक हिस्सा है। उसका ख़ास काम हमारा मनोरंजन मात्र नहीं है, हमारी सूक्ष्मतम मानवीय संवेदनाओं और अनुभूतियों को जीवित रखना है। वे मुरझा न जाए इसके लिए भाषा की काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी ज़रूरी है।"[12]

कविता को जीवित रखना इसलिए भी ज़रूरी है क्योंकि यह मनुष्यता के आधारभूत मूल्य को पोषित करती है। मनुष्य के आधारभूत मूल्यों से तात्पर्य उन मूल्यों से है जो मानवीय चरित्र की बुनियाद हैं। अब फ़र्ज़ कीजिए अगर इंसान में करुणा न हो, प्रेम न हो, वह साम्प्रदायिक हो जाए, तो क्या वह मनुष्य कहलाने का हकदार है? कुँवर नारायण के दृष्टिकोण से देखें तो कविता एक ज़रूरी हस्तक्षेप का कार्य करती है। जीवन में भी, और भाषा में भी। आज भी एक महत्वपूर्ण

जिम्मेदारी कविता के कन्धों पर है जिसकी ओर इशारा करते हुए कुँवर जी लिखते हैं "मेरी समझ में कविता का खास काम आज भी, हमेशा की तरह, हमारे अंदर उन सद्वृत्तियों और मानवीय भावनाओं को जगाए रखना है जो आदमी और आदमी के बीच मधुर संबंधों का आधार बन सकें।"[13]

➢ कविता का भविष्य

आम पाठक और कविता के बीच बढ़ती दूरी एक चिंताजनक बात है। परन्तु क्या यह सिर्फ़ कविता के लिए चिंताजनक है? या कविता के पाठकों के लिए भी है? कुँवर नारायण की नज़रों में कविता वह नाजुक भाषायी चेष्टा है जिसका बाज़ारवाद के तर्कों से दूर-दूर तक कोई लेना-देना नहीं। कविता के महत्त्व को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम इस सत्य को जान लें कि कविता हमारी ज़िन्दगी में उस तरह से शामिल नहीं है जिस तरह से अन्य भौतिक साधन। कुँवर नारायण के काव्य-संबंधी दृष्टिकोण की एक महत्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि इस बात से वाकिफ़ होते हुए भी कि वर्तमान दौर की यांत्रिक व्यवस्था साहित्य के विकास में सहायक नहीं है, वे कभी निराशावादी नहीं हुए। साहित्य एक दिन इस धरती से लुप्त हो जाएगा, ऐसा डर उनके मन में कभी नहीं आया। अजित राय के साथ एक साक्षात्कार में साहित्य के भविष्य के विषय में वे कहते हैं- "मेरा मानना है कि इस नए जमाने में भी कविता ज़रूर बची रहेगी। नक्कारखाने में तूती की आवाज़ की तरह और साहित्य बचा रहेगा और कहीं नहीं तो हमारे भीतर।"[14]

कुँवर नारायण साहित्य को मनुष्य के भीतर जीवित रखने के लिए सतत प्रयत्नशील नज़र आते हैं। उनकी कविताओं को मनुष्य के भीतर की दुनिया को विस्तार देने वाले उपक्रम के रूप में देखा जा सकता है। बाहर के शोर में भीतर की चीजों को खोजने का प्रयास हमने कम कर दिया है। कुँवर नारायण की कविता हमें अपने भीतर की उस दुनिया में प्रवेश के लिए प्रेरित करती है, जो अपेक्षाकृत अधिक सृजनशील और अधिक संभावनाशील है। उदाहरण के रूप में उनकी

कृति "कुमारजीव" को उद्धृत किया जा सकता है। कुँवर नारायण जिस समग्र जीवनबोध और आत्मिक उन्नयन की बात करते हैं, उसका मूल ध्येय भी इसी भीतर की दुनिया में प्रवेश करना है-

"पहले कभी नहीं सुना जो संगीत

अपने अंदर गूँजने लगती है उसकी अनुभूति

जैसे-जैसे ख़ामोश होता जाता बाहर का शोर

तीव्रतम होती जाती है उस संगीत की प्रतीति।"[15]

अपने भीतर के मनुष्य को खोजने की यह प्रक्रिया हम अनवरत कुँवर जी की कविता में पाते हैं। पर यह खोज की प्रक्रिया एक जैसी नहीं है। भिन्न-भिन्न उपादानों पर यह बदलती है। और, इस बदलाव को कवि ने कभी छिपाया नहीं है, इसलिए सजग पाठक इसे आसानी से लक्षित कर सकते हैं। 'चक्रव्यूह' और 'परिवेश: हम-तुम' को पढ़ते हुए कवि की जिस भाषा-शैली और मानसिकता का पता चलता है 'वाजश्रवा के बहाने' और 'कुमारजीव' का कवि उससे भिन्न है। एक बात तो उनकी कविता में आदि से लेकर अंत तक है कि उनकी कविता जीवन की सच्चाइयों को खोजने पर बल देती है। ध्यातव्य है कि अस्तित्व और अनस्तित्व संबंधी चिंता भारतीय दर्शन और मानवीय जीवन के प्रमुख सरोकारों में से रही है। शायद यही वजह है कि उनकी कई कविताओं में अस्तित्व अनस्तित्व संबंधी सवालों को हम मुखरित होते पाते हैं। मनुष्य के जीवन से ही वे अपनी कविता का स्रोत ढूँढ़ते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि कविता मन की आँखों से जीवन को देखने का नाम है। स्वयं उनके शब्दों में "जीवन को कविता में मन और आँखों से देखना, सिर्फ अपने समय को देखना नहीं है-समय के आरपार देखना भी है।"[16]

सवाल उठता है कि समय के आरपार देखने की कोशिश कवि के लिए क्या महत्त्व रखती है?कवि का कालातीत हो जाना, सार्वभौमिक संवेदना को अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त कर

जाना क्यों ज़रूरी है? इन सवालों पर विचार करते हुए हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि श्रेष्ठ कविताएँ क्षणिक लाभ के लिए नहीं रची जाती हैं, उनपर न किसी देश का अधिकार होता है न किसी व्यक्ति का। उसका भी नहीं जो उसका रचियता होता है। जबतक कोई कविता कवि के मानस में है तब तक उसपर कवि का हक़ है। जैसे ही वह पाठक के समक्ष आती है, फिर वह कविता हर उस पाठक की है जिसकी उस कविता में निहित संवेदना से साझेदारी होती है। कविता का अर्थ-विन्यास पाठक और श्रोता की चेतना में होता है। कविता की कौन-सी पंक्ति पाठक की चेतना के कौन-से तार को झंकृत कर दे, और उसके जीवन का हिस्सा बन जाए, कहना मुश्किल है। ध्यातव्य है कि कविता जीवन से संबद्ध विधा है, उसका मूल चरित्र जीवनवादी होना है। कुँवर नारायण मनुष्य के जीवन से कविता की संबद्धता के विषय में लिखते हैं- "जीवन में ऐसा कुछ नहीं जहाँ कविता न हो : जहाँ वह नहीं होती वहाँ भी अगर उसके न होने की तकलीफ को महसूस कराया जा सके तो शायद जब तक हममें इस तकलीफ का एहसास जिंदा है, कविता भी जिंदा है-हमारी भाषा में, हमारे रहने-सहने में, हमारी चेतना में।"[17]

जीवन में कविता की यह उपस्थिति कवि को आश्वस्त करती है कि मुश्किल से मुश्किल वक्त से भी कविता अपना सार्थक संबंध बना पाएगी। कुँवर नारायण का कविता पर यह विश्वास यूँ ही नहीं है। इस आश्वस्ति के पीछे कवि और कविता की ऐतिहासिक परंपरा है। चाहे ख़ुसरो हों या ग़ालिब, चाहे तुलसी हों या कबीर किसी को भी कविता रचने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं मिली थीं। परन्तु इनकी प्रतिभा ने कभी परिस्थितियों के आगे घुटने नहीं टेके। विध्वंश के बीच कवियों की उपस्थिति कवि को कविता के भविष्य के लिए निश्चिन्त करती है-"एक उजड़ती, तहस-नहस दिल्ली में भी अगर मीर और ग़ालिब संभव हो सके तो यकीनन साहित्य आनेवाले समय में उससे भी सार्थक रिश्ता बना सकने में सफल होगा।"[18] युद्ध के विध्वंश और मार-काट के बीच भी मीर और ग़ालिब का संभव होना इस ज़रूरी यकीन का होना है कि कविता में वह जीवनशक्ति है कि वह विपरीत से विपरीत परिस्थितियों में भी मानवता की प्राण-वायु बन

सके। कविता का होना दरअसल सिर्फ़ एक पद्यात्मक संयोजन का होना नहीं है। वह उन तमाम शक्तियों की उपस्थिति का द्योतक है जिसका प्रतिनिधित्व कविता करती है। कविता एक संस्कृति है। वह संस्कृति जो हिंसा और लोभ की भाषा में किये गये संवाद को नकारती है और प्रेम की भाषा में जीवन-गीत को रचती है। कविता की उपस्थिति उन जीवन-मूल्यों की उपस्थिति से जुड़ी है जिसका संबंध कविता से है। कविता के भविष्य पर बात करते हुए कुँवर जी कहते हैं-"कहीं न कहीं हमको यह विश्वास तो रखना ही चाहिए कि कविता बची रहेगी और वे सब चीजें भी बची रहेंगी, जिन्हें कविता बचाए रखना चाहती है, किसी भी हालत में।"[19]

अब सवाल उठता है कि अगर कवि और कविता का संरक्षण इतना ही ज़रूरी है तो किसी भी राज्य-सत्ता के लिए कवि और कविता तो हर हालत में प्रासंगिक होने चाहिए। उन परिस्थितियों में भी जब कवि राज्य की नीतियों के खिलाफ़ लिख रहे हों। पर क्या हमारा समय इतना सहिष्णु और उदार है कि वह अपनी आलोचना सुन सके। जब मुगलों का शासन था तब कबीर ने हिंदू और मुस्लिम दोनों के धर्माडंबरों के खिलाफ़ टिप्पणी की और तल्ख़ टिप्पणी की। बिहारी के नीतिगत दोहे ने काम-क्रीड़ा में मग्न राजा को चेतनशील बनाया। तो क्या हमारा समय कई मामलों में मध्यकालीन समय से भी पिछड़ा हुआ है। यह विचारणीय प्रश्न है, जिसके आलोक में हमें आत्ममूल्यांकन करना चाहिए। कुँवर नारायण कवि और कविता की स्वतंत्रता के लिए प्रतिबद्ध हैं। उनका स्पष्ट मत है- "मैं यह दलील यहाँ नहीं रख रहा हूँ कि लेखक को सुविधापरक समाज मिले। उल्टे मेरी दलील यह है कि उसे राज्य के विरोध में रहकर भी लिख सकने की आज़ादी हो। राज्य की नीतियों से साठ-गांठ वाली स्थिति में नहीं, भंडा-फोड़ वाली स्थिति में भी, उसकी सम्भावना बरकरार रहे।"[20]

हमें नहीं भूलना चाहिए कि कवि का विरोध भी सृजन को जन्म देता है। सत्ता सिर्फ़ वर्तमान देखती है जबकि कवि वर्तमान के साथ-साथ परंपरा, इतिहास और भविष्य को भी अपनी

नज़रों से ओझल नहीं होते देता। कुँवर नारायण मानते हैं कि राजनीति के जनवाद से ज़्यादा विस्तृत साहित्य का जनवाद है और जनतंत्र से साहित्य का जुड़ाव ही उसकी जीवन-शक्ति है। साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा होने के नाते जनसरोकार कविता की भी शक्ति बन जाती है। इसलिए एक कवि का यह नैतिक दायित्व हो जाता है कि वह जीवन के परिप्रेक्ष्य में राजनीति को देखे परन्तु राजनीति की नज़र से जीवन को न देखे। बकौल कुंवर नारायण-"कविता अपने उदारतम अर्थों में 'जीवनवादी' होती है 'राजनीतिवादी' नहीं। वह राजनीतिक दृष्टि से जीवन को नहीं देखती, लेकिन राजनीति को भी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देती।"[21]

कविता के साथ प्रत्येक पाठक का रिश्ता अलग होता है। कुँवर नारायण की कविताओं के संदर्भ में यह बात और भी महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि उन्होंने रूपक की भाषा का प्रयोग अपनी कविता के लिए किया है। प्रतीक और रूपक की भाषा में व्यक्त होने के कारण इन कविताओं के पाठक को यह आज़ादी है कि वह उक्त कविता का भाव अपने जीवनानुभव के आधार पर ग्रहण करे। निश्चित तौर पर इस मामले में कविता सबसे अधिक लोकतांत्रिक विधा है। कुँवर नारायण लोक से कविता की इस संबद्धता से वाकिफ़ थे इसलिए उनकी कविता में अपने पाठकों के लिए जीवन-अनुभव का एक विशाल क्षेत्र है। पाठक जीवन के विविध पड़ावों को इन कविताओं में ढूँढ सकता है। कुँवर नारायण जीवन पर एक चिंतक की तरह विचार करते हैं और कवि की भाषा में उस विचार की अभिव्यक्ति करते हैं। जीवन से अपनी कविताओं की संबद्धता के विषय में कुँवर जी लिखते हैं-"कविता मेरे लिए जीवन को एक विशेष तरह निकट से देखना है, बारीकी से-जीवन को भी और उसके आर-पार भी-इस तरह कि उसके सबसे मानवीय, सहानुभूतिपूर्ण और उदात्त पक्ष बराबर दृष्टि में रहें।"[22]

जीवन के उदात्त पक्ष को कविता द्वारा देखने की इस कोशिश में कुँवर जी कितने सफल रहे हैं इस बात का प्रमाण उनकी सुदीर्घ काव्य-यात्रा है। कविता कुँवर जी के लिए इसलिए भी

महत्वपूर्ण है क्योंकि उसकी उपयोगिता भौतिक उपयोगिता से भिन्न और विशेष है। इस भौतिक दुनिया की आपाधापी में कविता कुँवर जी के लिए एक मानवीय दृष्टि का हस्तक्षेप है। वे इस बात को मानते हैं कि हमारे चारों तरफ मीडिया की जो प्रतिस्पर्द्धा है उसमें यह अनिवार्य हो जाता है कि हम कविता पर यांत्रिक ढ़ंग से विचार करने के बजाय जीवन से उसकी वाबस्तगी को बृहत्तर परिप्रेक्ष्यों में रखकर सोचें। कुँवर जी के शब्दों में- "मीडिया की होड़ में हम कविता को यांत्रिक ढ़ंग से तो नहीं ही बदल सकते, लेकिन यांत्रिकता से ज़रा हटकर ऐसी एक जगह ज़रूर बना सकते हैं,जिसका ताल्लुक़ सबसे पहले हमारे मनुष्य होने की बुनियादी नियति से है। यानी एक ऐसा भावजगत जिसमें कुछ समय बिताकर हमें शान्ति और शक्ति मिले। जहाँ हम अपने रू-ब-रू होकर ज़िन्दगी को दैनिकता और व्यावसायिकता से ज्यादा बड़े परिप्रेक्ष्य में भी रखकर सोच सकें।"[23]

दैनिकता और व्यावसायिकता से बड़े परिप्रेक्ष्य में ज़िन्दगी को देखना दरअसल दुकानों और कारखानों से परे ज़िन्दगी की संभावनाओं को तलाशना है। कुँवर जी कविता का संबंध मनुष्य होने की बुनियादी नियति से मानते हैं। अर्थात कविता से दूर जाना उस बुनियाद से दूर जाना भी है जिसमें मनुष्य का मनुष्यत्व निर्भर करता है। आज व्यावसायिकता की होड़ में हम उस बुनियाद से निरंतर दूर होते चले जा रहे हैं। कविता को अपने जीवन और भाषा में बचाना मनुष्यत्व के बुनियाद की ईंट को बचा लेना है। कुँवर जी जब भी कविता की उपयोगिता की बात करते हैं तो इस बात पर जोर देते हैं कि आज जब स्थूल व्यावसायिक दृष्टि, विश्वदृष्टि का निर्माण कर रही है ऐसे में कविता को बचाना मानवीय दृष्टि का ज़रूरी हस्तक्षेप है -"जीवन और भाषा में कविता की उपस्थिति को अगर एक मानवीय दृष्टि के हस्तक्षेप के रूप में देखा जाए तो उसकी उपयोगिता को आसानी से आत्मसात किया जा सकता है।"[24] आज जब हम अपने इर्द-गिर्द देखते हैं तो पाते हैं कि टेक्नोलॉजी और मनोरंजन का व्यवसाय फल-फूल रहा है। मनोरंजन के नाम पर भी फूहड़ सामग्रियाँ परोसी जा रही हैं। कविता की ज़रूरत को मनोरंजन की इन फूहड़

सामग्रियों और भौतिक सुविधा प्रदान करने वाली टेक्नोलॉजी की श्रेणी में रखकर देखना गलत होगा। कविता का संबंध हमारे उस चित्त से है जो सिर्फ़ वस्तुबोध तक सीमित नहीं है। कविता हमारे जीवन-शक्ति के आंतरिक स्रोतों को पोषित करती है।आज कविता के पाठक दिनोंदिन कम होते जा रहे हैं आज कविता की ज़रूरत सबसे अधिक है। आज बाहर के शोर में हमने अपने अन्दर की आवाज को सुनना लगभग बंद कर दिया है। कविता हमें इस आंतरिक दुनिया में प्रवेश का मार्ग सुझाती है। एक साक्षात्कार में वर्तमान समय में कविता की ज़रूरत के संदर्भ में बात करते हुए कुँवर जी कहते हैं कि-

"आज अगर कविता कम पढ़ी और सुनी जा रही है, तो इससे यह आसान नतीजा निकाल लेना कि समाज को उसकी ज़रूरत नहीं भयानक ज़ल्दबाज़ी होगी।"[25]

सारतः यह कहा जा सकता है कि कुँवर नारायण की नज़रों में कविता मनुष्य की बुनियादी ज़रूरतों में शामिल है। जीवन और विवेक दोनों से जुड़े होने की वजह से कविता का क्षेत्र व्यापक है। इतना व्यापक कि उसमें समूची मनुष्यता समा सकती है। कुँवर जी की काव्य-दृष्टि उनकी जीवन-दृष्टि से अविच्छिन्न रूप में जुड़ी हुई है। कुँवर जी के व्यवहार में जो संयम आजीवन रहा उसकी प्रतिच्छवि हमें उनकी कविता में भी देखने को मिलती है। यहाँ भावनाओं का ज्वार नहीं उभरता बल्कि सुंदर, सभ्य रूप में भावनाएँ विवेक के साथ अभिव्यक्ति पाती हैं। और, हमें सृजन का एक नया रूप देखने को मिलता है। कुँवर जी मानते हैं कि ज़िन्दगी में कविता की ज़रूरत को समझने के लिए व्यावसायिक दृष्टि के इतर मानवीय दृष्टि की आवश्यकता है। बाज़ार ने जीवन और उसकी संभावनाओं को सीमित कर दिया है। हमारा 'स्व' निरंतर सिमटता जा रहा है। परिणामस्वरूप हमने अपने आस-पास की प्रकृति को भी अपना प्रतिद्वंद्वी बना लिया है। कविता, प्रकृति समेत समस्त चराचर जगत के अन्य उपादानों से मनुष्य के रागात्मक संबंधों की अभिव्यक्ति है।

कुँवर जी का विश्वास है कि तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद कविता हमारे अंदर जीवित रहेगी और भविष्य में हमारे भावजगत का विस्तार कर मनुष्यता की बुनियाद को मजबूत करेगी। कविता की रचना-प्रक्रिया को कुँवर जी सम्पूर्ण जीवन-संदर्भों के साथ जोड़कर देखते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ:

1. (सं) विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-55
2. (सं) विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार : कुँवर नारायण, पृष्ठ-38
3. (सं) विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-28
4. वही, पृष्ठ-34
5. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं, पृष्ठ-53
6. (सं) विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-138
7. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं, पृष्ठ-53
8. कुँवर नारायण, वाजश्रवा के बहाने, पृष्ठ-120
9. (सं) विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ- 116
10. वही, पृष्ठ-55
11. कुँवर नारायण, कुमारजीव, पृष्ठ-96
12. (सं) विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-61
13. (सं) विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार: कुँवर नारायण, पृष्ठ- 45
14. (सं) विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-96
15. कुँवर नारायण, कुमारजीव, पृष्ठ-82
16. (सं) विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार: कुँवर नारायण, पृष्ठ-120
17. वही, पृष्ठ-114
18. (सं) यतीन्द्र मिश्र, शब्द और देशकाल, पृष्ठ-105
19. (सं) विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ-130
20. (सं) यतीन्द्र मिश्र, शब्द और देशकाल,102
21. (सं) विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-73

22.(सं) विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार: कुँवर नारायण, 109

23.(सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-15

24.(सं) विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ-112

25.(सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-15